सुबह होती है

पिछले कुछ वर्षों में पूंजीवाद और साम्यवाद के संघर्ष ने अर्थशास्त्र के क्षेत्र को छोड़कर राजनीति के क्षेत्र में बड़ी गम्भीरता से प्रवेश किया है। इस संघर्ष का अस्तित्व आज के भयंकर राजनीतिक वातावरण में सर्वत्र दृष्टिगोचर हो रहा है। भारत में भी इसका गहरा प्रभाव पड़ा है।

दक्षिणी भारत की यात्रा करते हुए विख्यात प्रगतिशील लेखक श्री कृष्णचन्द्र ने बढ़ती हुई साम्यवादी विचारधारा को देखा और उसका आगामी सुबह के रूप में स्वागत किया। फिर भी यह पुस्तक राजनीतिक प्रचार नहीं है, बहुत ही रोचक यात्रा-संस्मरण है।

सुबह होती है

कृष्णचन्द्र

चेतन प्रकाशन

सुबह होती है

कृष्णचन्द्र

वचेतन प्रकाशन

प्रकाशक
नवचेतन प्रकाशन दिल्ली ।

मूल्य तीन रुपये

मुद्रक
गोपीनाथ सेठ, नवीन प्रेस, दिल्ली ।

★

प्रथम संस्करण
१९५०

★★★

केरल की लुभावनी घाटियों और हरे-भरे मैदानों में यात्रा करते हुए मुझे ऐसा महसूस हुआ जैसे मैं मनुष्य की आत्मा की वादी में चल रहा हूँ---वह आत्मा जो बहुत प्राचीन, महान और शानदार है; वह आत्मा जो बिलकुल नवीन और उच्च है और प्रत्येक क्षण नई होती जा रही है।

इस वादी के चप्पे-चप्पे पर मुझे मनुष्य के परिश्रम के निशान मिलते हैं, और उन लड़ाइयों का सुराग मिलता है जो मनुष्य को साम्यवादी मंजिल की ओर ले जाते हैं; यहां पर उन साहसी शहीदों के कदम हैं जिन्होंने अपने खून के छींटों से इन्कलाब के चमन सजाये हैं। सारे केरल की धरती हमारे शहीदों की मां है।

इस मां की गोद में कुछ दिन रहकर मेरे हृदय में जीवन की शक्ति और जीवन के प्रेम का विश्वास दृढ़ हो गया है; और मुझे महसूस होता है कि एटम् बम और हायड्रोजन बम की खोज के बाद भी मानव नहीं मरेगा; वह उन्नति के शिखर पर आगे ही बढ़ता जायगा।

—कृष्णचन्द्र

★★★

मैंने अपनी मुस्कराहट को अच्छी तरह खुशामद से चिकना करके, काउन्टर पर खड़ी हुई सुन्दर सिन्धी लड़की से कहा—"मुझे मद्रास एक्सप्रेस में 'त्रिचूर' के लिए एक सीट चाहिए।"

सिन्धी लड़की ने अपने निकट खड़े हुए गुजराती क्लर्क की ओर देखा। उसने आँखों-ही-आँखों में न जाने उससे क्या कह दिया। सिन्धी लड़की मेरी ओर देखकर बड़ी रुखाई से बोली—"नहीं है।"

"अच्छा," मैंने कहा—"आज नहीं तो कल की गाड़ी में ही सही।"

"नहीं है," उसने फिर उसी मशीनी-लय में उत्तर दिया।

"परसों?" मैंने फिर पूछा।

सिन्धी लड़की ने एक गुजराती ब्लाउज पहन रखा था, जिसमें कशीदे के सुर्ख-सुर्ख घेरों में नन्हे-नन्हे दर्पण टंके हुए थे। जब मैंने उसकी ओर देखा तो एक क्षण में ही मेरा चेहरा, उसके ब्लाउज के नन्हे-नन्हे सैकड़ों दर्पणों में टूट गया। सिन्धी लड़की ने शीघ्रता से ब्लाउज पर साड़ी को ठीक किया, ताकि यौनि-आकर्षण स्थिर रहे। फिर गुजराती क्लर्क की ओर शीघ्रता से देखकर मेरी ओर घूमी और घबराकर बोली—"परसों भी नहीं है।"

अब मैंने अपने जीवन की उत्तम मुस्कराहट का प्रयोग किया और उससे कहा—"देखिये, मैं रिफ्यूजी हूं।"

सिन्धी लड़की की आँखों में लगावट का एक हल्की-सी झलक दिखाई दी और गुजराती क्लर्क के माथे पर त्यौरी चढ़ गई। लड़की ने मुझसे पूछा—"सिन्ध से आये हो?"

मैंने फौरन उत्तर दिया—"नहीं।"

"तो बंगाल से आये हो?"

"नहीं।"

"पंजाब से?"

"नहीं।"

"तो फिर कहाँ से निकाले गए हो?" सिन्धी लड़की ने परेशान होकर पूछा।

"मैं बम्बई में अपने घर से निकाल दिया गया हूँ," मैंने शीघ्रता से कहा—"मकान-मालिक को पिछले चार माह से किराया नहीं दे सका।"

सिन्धी लड़की ने कहा—"देखिये साहब, यह मज़ाक खत्म कीजिये। यहाँ बीस तारीख तक कोई सीट खाली नहीं है। हाँ, यदि साधारण दूसरे दर्जे में सीट चाहें तो, उस सामनेवाले काउन्टर पर पहुँचिये, शायद कोई जगह मिल जाय।" यह कहकर वह बटुए में से लिपस्टिक निकालने लगी। मैं साधारण दूसरे दर्जे के काउन्टर पर चला गया।

वहाँ साधारण दूसरे दर्जे के काउन्टर पर एक असाधारण सुन्दर दक्षिणी लड़की खड़ी थी। माथे पर चमकता हुआ कुंकुम, गोल गेहुँए चेहरे पर पवित्रता की छाप—जैसे असली तम्बाकू पर वर्जिनिया की छाप होती है। मुझे काउन्टर के निकट आते देखकर वह बड़े लुभावने भाव से हँसी, और मुझे यह दिखाकर कि उसके दाँत वास्तव में बहुत ही सफेद और मोतियों-जैसी चमक लिये हुए हैं, उसने मेरी ओर देखकर कहा—"आज की मद्रास एक्सप्रेस में तो कोई जगह नहीं है।"

"कल?" मैंने बड़ी रुखाई से पूछा।

"कल भी नहीं।" उसने ऐसे लुभावने स्वर में कहा, जैसे मुझ पर बड़ा एहसान किया हो।

"परसों ?" मैंने ज़रा कठोरता से कहा।

"परसों क्या, बाईस तारीख़ तक सब जगह बुक हैं," वह मुस्करा-कर बोली। उसकी आवाज़ इतनी मीठी और शहद की भाँति स्वच्छ थी कि आदमी उसे डबलरोटी पर लगाकर खा सकता था। क्योंकि मुझे इस समय डबलरोटी की नहीं एक सीट की तलाश थी, इसीलिए वहाँ से खिसक लिया और सीधा डिवीजनल ट्रैफिक मैनेजर के पास चला गया।

डिविजनल ट्रैफिक मैनेजर एक मराठा सरदार की तरह बड़ी मजबूती से अपनी कुर्सी पर बैठा था। उसने लखनऊ की मलाई के रंग का सूट पहन रखा था। उसके सुन्दर गंजे सिर के ऊपर एक बल्ब चमक रहा था, जिसका प्रकाश उसके सिर के आसपास एक कुंडल-सा बना रहा था, जिससे उसके सारे व्यक्तित्व के इर्द-गिर्द सम्मोहन की पवित्रता-सी फैली हुई प्रतीत होती थी। मैंने उसके सामने पड़ी हुई कुर्सी पर बैठकर कहा—"मुझे त्रिचूर आज ही जाना होगा।"

"तो जाइये।"

"मगर कोई सीट नहीं मिलती।"

वह बेबसी से हाथ मलते हुए बोला—"तो मैं इसमें क्या कर सकता हूँ ?"

मैंने कहा—"बात केवल इतनी है कि त्रिचूर में दक्षिणी भारत के प्रसिद्ध साहित्यकारों की एक कॉन्फ्रेंस हो रही है और मैं उसका सभापति हूँ। यदि मैं आज यहाँ से न चला तो वह बेचारे मेरे सभापतित्व से वंचित रह जायेंगे।"

मराठा सरदार ने गरजकर कहा—"चपरासी !"

चपरासी अन्दर आया।

"हैडक्लर्क को बुलाओ।"

हैडक्लर्क अन्दर आया।

"आपको मद्रास ऐक्सप्रेस में एक सीट दे दो......."

"सीट नहीं, एक बर्थ," मैंने बढ़ावा दिया—"तीन दिन और दो रात का सफर है।"

"एक बर्थ।" मैनेजर ने कड़ककर कहा।

हैडक्लर्क ने धुँधियाई हुई संकुचित दृष्टि से मेरी ओर घूरकर देखा और बोला—"यस सर !"

बाहर निकलकर हैडक्लर्क ने मुझे एक पर्चा दिया और कहा—"इसे बुकिंग-काउन्टर पर ले जाइए, हो जायगा।"

जब मैं वापस सिन्धी लड़की के पास पहुँचा तो वह गुजराती क्लर्क बड़े घबराये हुए स्वर में उसके कान में कह रहा था—"उस सेठ का रिज़र्वेशन के लिए फोन आया था।"

मुझे देखते ही सिन्धी लड़की झल्लाकर बोली—"जब मैंने आपसे एक बार........"

उसके आगे मैंने उसे बात नहीं करने दी। जल्दी से पर्चा उसके हाथ में थमाकर, मैं सुन्दर दक्षिणी लड़की से कहने लगा—"हलो ! सीट तो मिल गई है। अब ज़रा रात के खाने के लिए एक तार दे दो।" दक्षिणी लड़की ने मुँह फेर लिया—बाईस तारीख़ की बच्ची !

सिन्धी लड़की ने पर्चा देखकर बड़े आश्चर्य से पूछा—"आपको सीट कैसे मिल गई ?"

आश्चर्य तो मुझे भी था, किन्तु मैं चुप रहा। जैसे यह भी कोई सरकारी भेद हो। और वास्तव में यह सरकारी भेद ही तो था। बेचारा ट्रैफिक मैनेजर जाने मुझे सरकारी साहित्यिकों की कॉन्फ्रेंस का सभापति या जाने क्या समझकर सीट दे बैठा। अगर कहीं उसे पता चल जाता कि यह प्रगतिशील साहित्यिकों की कॉन्फ्रेंस है, तो मद्रास एक्स-प्रेस तो क्या, किसी मालगाड़ी में भी स्थान नहीं देता—खासकर उस नये सक्यूलर के बाद, जिसमें सुना है कि सरकार ने प्रत्येक विभाग को प्रगतिशील-लेखकों से सावधान होने को कहा है और यह चेतावनी भी दी है कि इस सक्यूलर के बाद कोई भी सरकारी कर्मचारी प्रगतिशील-

लेखक-संघ का मेम्बर नहीं हो सकता। (केवल सी० आई० डी० के आदमी हो सकते हैं।)

जब मीट खत्म हो गई तो मैंने घड़ी की ओर देखा। एक बजा था। मद्रास एक्सप्रेस दो बजे छूटती है। इसलिए मैंने अपने डब्बे में जाकर बर्थ के ऊपर बिस्तर जमा लिया, और आराम करने के विचार से सो गया।

जब उठा तो रात के नौ बज रहे थे। एक सहयात्री ने मुझे झिंझोड़-कर जगाया, क्योंकि गाड़ी उस स्टेशन पर खड़ी थी जहाँ खाने के लिए तार दिया था। एक आदमी डब्बे के सामने टिफिन-कैरियर लिये खड़ा था। टिफिन-कैरियर खोला तो जीवन में पहली बार दक्षिणी-भारत का खाना अपनी आँखों के सामने देखा। पहले डब्बे में 'रसम' था—टमाटर के सूप की भाँति खट्टा, फिर 'साँबर' जिसमें दाल और भाजी और क्या कुछ नहीं था। फिर दो तरह की दही। अन्त में चावल और एक छोटी-सी कटोरी में 'पिचड़ी' और केले के पत्ते में सूजी का 'उपमऊ' और दो 'पपड़म्' जिन्हें हम लोग अपने यहाँ केवल पापड़ कहते हैं। यह बढ़िया और हल्का-फुल्का खाना खाकर मैं फिर सो गया और जब सुबह हुई तो देखा कि बम्बई का प्रान्त बहुत दूर पीछे रह गया है और अब रेल-गाड़ी हफ-हफ करती हुई दक्षिणी भारत की घाटियों में से गुज़र रही है।

मैं इस अजनबी देश में पहली बार आया था, इसलिए खिड़की से सिर टिकाये बराबर बाहर की ओर देख रहा था। यह बदलता हुआ दृश्य

बम्बई से कितना भिन्न है ! यद्यपि पश्चिमी-घाट की पहाड़ी शृंखलाएं यहाँ भी थीं, किन्तु बम्बई से कितनी भिन्न ! क्योंकि दक्षिणी भारत भूमध्यरेखा के बहुत निकट है, इसलिए यहाँ के फल-फूल और वृक्ष इतने बदल गए थे कि बदल जाने पर भी अपरिचित-से नहीं मालूम होते थे। बल्कि ऐसा जान पड़ता था कि यहाँ भले ही पहली बार आ रहा हूँ फिर भी जैसे मैंने इन तमाम दृश्यों को इससे पहले भी कहीं देखा है। यकायक 'कड़प्पा' के पहाड़ी क्षेत्र में मैंने 'भेकड़' की झाड़ियाँ देखीं। भेकड़, जो काश्मीर के निचले पहाड़ी क्षेत्रों में यानी मीरपुर और कोटली में पाई जाती है, यहाँ भी मौजूद थीं। एक क्षण के लिए मेरा मस्तिष्क उन सुदूर बदनसीब घाटियों में घूमने लगा जहाँ कभी 'माहिया' के गीत थे और आज बन्दूक की गोली है; जहाँ कभी मनुष्य प्रेम करते थे और आज घृणा करते हैं; जहाँ कभी किसान हल चलाते थे और आज खाइयाँ खोद रहे हैं; जहाँ हिन्दुस्तान और पाकिस्तान विदेशी साम्राज्यवादियों की कठपुतलियाँ बनकर, वनस्पति-साम्राज्य का खेल खेल रहे हैं। एक क्षण के लिए मेरा मस्तिष्क उधर पलट गया, जहाँ जीवन और मृत्यु का संघर्ष हो रहा है। फिर मैं दक्षिणी भारत की इस सुरम्य घाटी में लौट आया, और मैंने सोचा, यहाँ तो शान्ति है। यह दृश्य कितना शान्तिदायक है ! छोटे-छोटे पहाड़, कहीं-कहीं गोल-गोल चोटियों के ऊपर चट्टानों के फैले हुए छज्जे। ऐसा प्रतीत होता है जैसे पहाड़ों ने धूप से बचने के लिए अंग्रेजी टोपी पहन रखी हो। दूर मीलों तक फैला हुआ जंगल, फिर धान के खेत। कहीं पर धान की पनीरी, तो कहीं पर कटाई। एक जगह धान की फसल हरी है तो दूसरी जगह पीली हो गई है और काटी जा रही है। फिर पहाड़ी क्षेत्र और ढलुआनें, भेकड़ की झाड़ियाँ धूप में सनसनाती हुई गुजर जातीं। भेकड़ और खजूर, और खजूर के पेड़ों में घूमती हुई सुकुमार नदियाँ, और लम्बी दरियाई घास में चरते हुए बैल-बकरियों के रेवड़, संतरों के बाग, जिनकी मेंड़ों पर नागफनी की झाड़ियाँ। कहीं-कहीं कोई प्राचीन मन्दिर और गहरी

हरी आँखोंवाले तालाब—जितना बड़ा मन्दिर उतना बड़ा तालाब। उत्तरी भारत का तिकोना मन्दिर नहीं, दक्षिणी भारत का विशाल मंदिर। नीचे से ऊपर तक एक जंगल की भाँति फैलता हुआ, अपनी कला और शिल्पकारी में एक पर्वत-जैसी महानता और उसकी प्राकृतिक आकृति का लुभावना और अनोखापन लिये हुए। उत्तरी भारत का मन्दिर बहुत छोटा और बढ़िया होता है। दक्षिणी भारत का मन्दिर द्राविड़ी आत्मा का प्रतिबिम्ब है, वह आत्मा जो जंगल में पली, बढ़ी और शिकार खेलती रही। वह जंगल के विस्तार और उसकी विशालता, और खुले आकाश का हृदय पहचानती है, और उसे अपने मन्दिर की बनावट में समो देती है, क्योंकि दक्षिणी भारत का मन्दिर प्रारम्भ से ही दक्षिणी भारत की सभ्यता का केन्द्र रहा है और उसकी प्रतिदिन की दिनचर्या की धुरी। दक्षिणी भारत में बीसवीं शताब्दी तक भी केवल पूजा के लिए मन्दिर का उपयोग नहीं किया गया, बल्कि इसे दूसरे राजनीतिक और सामाजिक कामों के लिए भी व्यवहार में लाया गया है। मन्दिर नाचघर था, कथाकली की परम्परा का संरक्षक। राजा लोग मन्दिर में एक-दूसरे से वचन-बद्ध होते थे, लोग मन्दिरों में ही ब्याह करते थे, और युद्ध के समय मन्दिर से बीड़ा उठाकर जाते थे। मन्दिर के तालाब में लोग स्नान करते थे और स्त्रियाँ घर के काम-काज को और पीने को पानी भी यहीं से लेकर जाती थीं। दक्षिणी भारत में मन्दिर बहुत समय तक सामाजिक जीवन का केन्द्र रहा, और शायद इस कारण ही दक्षिणी भारत का जीवन इतनी देर तक ब्राह्मणवाद के इन्द्रजाल में उलझा रहा है।

कड़प्पा से नंदलूर तक पहुँचते-पहुँचते यह मनोहर प्राकृतिक दृश्य, जंगलों की एक बहुत बड़ी शृंखला का रूप धारण कर लेते हैं। यह

शृंखला मद्रास प्रान्त से फैलती हुई हैदराबाद रियासत की सीमा से जा मिलती है। नंदलूर के मुकाम पर मेरे डब्बे में एक रोमन कैथोलिक पादरी और उनके एक देसी साथी ने प्रवेश किया। रोमन कैथोलिक पादरी का गोल-गोल सुर्ख चेहरा बिलकुल बच्चों जैसा था, और उसके चेहरे पर एक चमकती हुई मुस्कराहट खेल रही थी। उसका दूसरा साथी सांवले रंग का लम्बा-तड़ंगा पिचके हुए गालोंवाला था, आँखों से बेचैनी और मक्कारी झलकती थी। वह मेरी सीट की ओर आते-आते बोला—"मैं जानता हूं यह बर्थ आपकी है, परन्तु हमें केवल चार स्टेशन आगे जाना है। अगर आपको आपत्ति नहीं हो तो हम लोग यहां बैठ जायं ?"

स्पष्ट है मुझे क्या आपत्ति हो सकती थी ! और फिर बाहर से बैण्ड बाजे की आवाज आ रही थी। मैंने सोचा, जरूर कोई बहुत बड़ा पादरी है, जिसके लिए सारा प्रबन्ध किया गया है। खिड़की से झांककर देखा तो कुछ सरकारी तरह के लोग, और बहुत से पुलिस के सिपाही नजर आए। माथा ठनका, कहीं यह लोग अपने ही स्वागत के लिए तो उपस्थित नहीं हुए ? मगर फिर यह सोचकर विश्वास हो गया कि अभी वह युग नहीं आया कि हम लोग बैण्ड बजाकर गिरफ्तार किये जायं, इसलिए मैंने अब जरा दूसरी तरह से मुस्कराकर पादरी से पूछा—"यह लोग आपको विदा करने आये हैं ?"

पादरी जोर-जोर से हँसने लगा और बोला—"वाह, वाह, यह तो खूब मजाक रहा। त्रीमेंदोस !"

पादरी अजीब तरह की अंग्रेजी बोलता था, ट को त कहता था और ड को द, इसीलिए Tremendous को त्रीमेंदोस कहता था। और वह भी इस प्रकार मुँह फुलाकर जैसे बहुत बड़ा निवाला मुँह में डाले हुए हो। यह पादरी अंग्रेज तो हो नहीं सकता, मैंने दिल में सोचा। मगर इस समय पूछने का अवसर नहीं था, क्योंकि बाज बैण्ड

बाजे की हो रही थी। दुबले-पतले देसी पादरी ने बताया कि बैण्ड बाजा मद्रास-प्रान्त के खाद्य-विभाग के मन्त्री के लिए है। ये सिपाही, ये सरकारी कर्मचारी, सब उन्हें विदा करने आये हैं। यह फलों की टोकरियां और दूसरी चीजें, जो आप देख रहे हैं, यह भी मन्त्रीजी के साथ 'अधिक-अन्न-उपजाओ आन्दोलन' के सिलसिले में जांच के लिए भिजवाई जा रही हैं।

मैंने खिड़की से झांककर मन्त्रीजी को अपने निकट के एक डब्बे में चढ़ते हुए देखा। आस-पास दर्जनों पुलिस के सिपाही थे। कभी यहां जनता होती थी। आज उनके आस-पास वही पुराने अफसर थे, वही फलों की टोकरियां थीं, वही बैरे!

मैंने बड़े पादरी से कहा—"फादर, मैंने कुछ अधिक गलत नहीं समझा, यह बैण्ड बाजा भी एक पादरी को छोड़ने आया है, गांधी-मत के एक बड़े पादरी को........"

दोनों पादरियों ने मेरी ओर बड़े जोर से घूरा। मैं मुस्करा दिया तो बड़ा पादरी फिर खिलखिलाकर हँसने लगा और बोला—

'ग्रीसंदोस!'

मैंने पूछा—"गाड़ी यहांपर क्या इतनी देर तक रुकती है?"

देसी पादरी बोला—"नहीं, केवल पांच मिनट रुकती है।"

"अब तो पन्द्रह मिनट से ऊपर हो गया?" मैंने झल्लाकर कहा।

"चलेगी, चलेगी, घबराओ नहीं।" उसने उत्तर दिया।

एक वृद्ध मनुष्य, जिसकी दाढ़ी और सिर के बाल बिलकुल सफेद थे, और सांवले चेहरे पर बड़ी-बड़ी प्रकाशमान आंखें थीं, गुलाब के फूलों की टोकरी लिये हुए आया, और मेरी खिड़की से अन्दर झांककर देखने लगा। मैंने पूछा—

"यह गुलाब के फूल कैसे दिये हैं?"

वृद्ध मनुष्य ने जल्दी से टोकरी पीछे हटा ली और मेरी ओर

झिड़कनी-दृष्टि से देखकर बोला—"बेगम अन्दर है?"

देसी पादरी ने जल्दी से कहा—"नहीं, वह अगले डब्बे में है।"

वृद्ध जल्दी से खिड़की के सामने से हटकर दूसरे डब्बे के सामने चला गया।

मैंने चकित होकर देसी पादरी से पूछा—"यह क्या माजरा है?"

देसी पादरी ने कहा—"यह एक लम्बी कहानी है, अगले चार स्टेशनों तक नहीं बताई जा सकती, इसलिए संक्षेप में कहता हूँ—"

★★★

इस वृद्ध का नाम यासीन है। यह राजा पीतमपुर के बागों में माली का काम करता था। यहां नंदलूर के मुकाम पर जो तुम सैकड़ों मीलों तक फैले हुए जंगलों को देखते हो, वह सब जंगलात राजा पीतमपुर की जागीर में शामिल हैं। नंदलूर में या तो यह जंगल हैं जिनसे लकड़ी काटकर बाहर भेजी जाती है या यहां संतरों के कुछ बाग हैं। दक्षिणी भारत में इनसे बढ़िया संतरे और कहीं नहीं मिल सकते। तुम इन्हें खाओ तो नागपुर के संतरों को भूल जाओ।

यासीन वर्षों से इन्हीं बागों में माली का काम करता था। इसके पहले उसका बाप इन्हीं बागों में काम करता था। वे राजा पीतमपुर की वफादार प्रजा थे। राजा साहेब ने यासीन को बाग के किनारे एक झोंपड़ा और थोड़ी-सी धरती खेतीबाड़ी के लिए दे रखी थी। धरती में धान की खेती होती थी। झोंपड़े की आस-पास की बेलों से तरकारी मिल जाती थी। फल-फलारी बाग से आ जाती, जहां यासीन दिन-रात काम में जुटा रहता।

यासीन की पत्नी समय हुआ मर चुकी थी। उसका खाना उसकी जवान बेटी बेगम बनाती थी, और झोंपड़े की देख-भाल भी वही करती थी। बेगम को यासीन ने बचपन से स्वयं ही पाला-पोसा था, क्योंकि जब यासीन की पत्नी मरी तब उस समय बेगम की उम्र पाँच साल से अधिक नहीं थी। मैंने उन दिनों यासीन से कहा था कि वह इस नन्ही लड़की को हमारे कन्वेंट में दे दे, यहां उसकी शिक्षा और पालन-पोषण का भी प्रबन्ध हो जायगा। मगर इस कमबख्त बुड्ढे ने

मेरी एक न मानी। यह बड़ा पक्का मुसलमान है, पाँच समय नमाज पढ़ता है। उस समय वह मुझसे कहने लगा—"पादरी साहब, मेरी पत्नी की एक ही निशानी तो मेरे पास रह गई है। इसे भी आपको दे दूँ तो मेरे पास क्या रह जायगा? आप मेरी बेटी ही नहीं मेरा धर्म भी मुझसे छीनना चाहते हैं।"

खैर, साहब! तो यासीन ने ही अपनी बेटी का पालन-पोषण किया। वह हर समय उसे अपनी निगाहों के सामने रखता। बाग में जाता तो उसे कन्धे पर उठाये-उठाये फिरता। लोग कहते हैं कि ममता का भाव केवल माँ के भीतर ही होता है, लेकिन मैंने तो बेगम के बाप में भी इस भाव को जागृत देखा।

बेगम जवान होकर बड़ी सुन्दरी निकली। आस-पास के गाँवों में भी कोई ऐसी सुन्दर लड़की नहीं थी। जब फूल खिलता है तो दूर-दूर तक उसकी सुगंध फैल जाती है। बेगम की सुन्दरता की चर्चा राजा साहब के कानों तक भी पहुँची। राल भी टपक पड़ी। लेकिन वह दिल मसोस कर रह गए, क्योंकि अब उनकी उम्र अस्सी वर्ष से ऊपर हो गई थी। उनमें अब फूल को तोड़ने और उसकी सुगन्ध लेने की शक्ति शेष नहीं रही थी। इसलिए बिचारे दिल थामकर रह गए—वह दिल जिसकी धड़कन अब किसी क्षण बन्द होना चाहती थी।

बेगम अपने बाप के साथ मर्दों की तरह बाग में काम करती थी। वह अपने खेतों में भी मर्दों की तरह ही जुटी रहती। इसके अलावा वह अपने झोंपड़े की संभाल भी स्वयं करती, क्योंकि अब उसका बाप वृद्ध हो चला था, और अब उससे अधिक परिश्रम भी नहीं होता था। बेगम ने अपने दिल में निश्चय कर लिया था कि जब तक उसका वृद्ध पिता जीवित है तब तक वह कभी ब्याह न करेगी। जब कभी यासीन ने उसके सामने ब्याह का नाम लिया तो वह बिगड़कर उससे लड़ पड़ती, और कई दिन तक रूठी रहती। बड़ी भावुक लड़की थी। अगर हमारे कन्वेंट में आ जाती तो इस समय बड़ी अच्छी 'भिक्षुणी' होती।

परन्तु अफसोस यह उसके भाग्य में नहीं था।

बेगम की सारी क्रियाएं मर्दानी थीं। लेकिन एक बात उसमें ऐसी थी जिससे स्त्री की सुकुमारता का भरपूर पता चलता था। उसे फूलों से प्रेम था और फूल भी गुलाब के फूल। उसने अपने झोंपड़े के आस-पास चारों ओर गुलाब की जंगली बेलें लगा रखी थीं, और झोंपड़े के बाहर भी अपने छोटे-से बगीचे में तरह-तरह के गुलाब गमलों में सजाये थे। उनकी कलमों को लाने के लिए यासीन ने दूसरे बाग के मालियों की कितनी ही खुशामदें की थीं। कितने परिश्रम से बेगम ने गुलाब के इन सुन्दर फूलों को अपने झोंपड़े के आस-पास सजाया था! लाल की भांति सुन्दर सुर्ख फूल और संध्या की लाली वाले गुलाब, जिनमें कुँआरे होठों की लालिमा थी—गुलाब, जिनकी रंगत में सुबह का स्वर्ण घुला हुआ था, चाँदनी रात की बरफ की तरह सफेद और भोला गुलाब, और पीले-पीले गुलाब, अपने हृदय में विरह की आग और दाग लिये हुए गुलाब; जिनकी महक इतनी तेज थी कि दूर-दूर तक धान के खेतों में फैल जाती थी; गुलाब, जिनकी महक प्रेम के खामोश भेद की तरह मद्धिम-मद्धिम और रहस्यमयी थी; वह हल्की-सी महक जो मुश्किल से एक चेहरे से उड़कर दूसरे चेहरे तक पहुँच सकती है। ऐसे सैकड़ों ही गुलाब थे जो बेगम के बगीचे में खिले हुए थे, जो बेगम के स्याह केशों की सजावट थे, जो उसके गले का हार थे, और उसके जूड़े की मनोहर वेणी की मुस्कान........

बस यही गुलाब, बेगम की कमजोरी थे। और यासीन जानता था कि यह कमजोरी स्वयं उसने बेगम के भावों में उत्पन्न की है। बचपन ही से उसने अपनी बेटी को फूलों से प्रेम करना सिखाया था। वह उसके लिए बगीचे में से चुराकर अच्छे-अच्छे फूल लाया करता था, जिनसे वह बेटी खेला करती थी। अब वह फूलों से खेलने का युग तो बीत गया किन्तु फूलों से प्रेम अब भी बाकी रह गया था। और अब उसका झोंपड़ा गुलाब के खिले हुए फूलों से इतना सघन मालूम होता था कि

यह कोई मद्रासी गांव नहीं, ईरानी कुंज हो।

एक दिन राजा पीतमपुर के राज्याधिकारी राजकुमार अपने मित्रों को लेकर नंदलूर शिकार के लिए पहुँचे। उनके अपने जंगल थे, अपने बाग थे, प्रजा भी अपनी थी, चारों ओर अपनी सम्पत्ति थी। डर किसी का नहीं था। स्टेशन से एक ओर साइडिंग में उनका स्पेशल सैलून लगा दिया गया, और राजकुमार हाँकियों को लेकर शिकार को निकल गए।

दिन-भर उन्होंने शिकार खेला। चीते, रीछ, हिरन, सूअर बहुत-से जंगली जानवर हाथ लगे। हाँकियों में से भी केवल दो जानों का नुक्सान हुआ। एक हाँकिये को तो चीते ने फाड़ डाला। दूसरा हाँकिया एक जंगली सूअर के हत्ते चढ़ गया। उसने अपनी सख्त थूथनी से उसके पेट को चीरकर उसकी आंतें बाहर निकाल दीं, और फिर क्रुद्ध होकर उसने उस बिचारे किसान को, थूथनी से उछाल कर उल्टा गिरा दिया। उस समय सूअर पर गोलियों की बौछार हो रही थी। मगर मरते-मरते भी उस कम्बख्त ने उस गरीब हाँकिये को कमर से गर्दन तक उधेड़ कर रख दिया। वह राजा साहब का बड़ा पुराना हाँकिया था। मगर अब क्या हो सकता था! शिकार में ऐसा हो होता है। बल्कि बहुधा तो ऐसा भी होता है कि एक चीते का शिकार भी नहीं होता, और दो-चार हाँकिये मुफ्त में जंगली जानवरों या किसी शिकारी की गोली का निशाना बन जाते हैं। इसीलिए समझिये कि आज का दिन तो बहुत अच्छा रहा। कोई पन्द्रह के करीब जंगली जानवर हाथ आए, जिनमें तीन चीते थे, और अपनी तरफ से कुल दो हाँकियों की जानें गईं।

राजकुमार बड़े प्रसन्नचित्त अपने सैलून की ओर लौटे, स्नान के बाद शराब का दौर रहा; और शराबबाजी के दौरान में जब राजकुमार की आँखें गुलाबी हो गईं और जबान लड़खड़ाने लगी तो कुँवर वीरसिंह ने हाथ जोड़कर प्रार्थना की—

"हुजूर जरा एकान्त में कुछ कहना चाहता हूँ।"

राजकुमार अपनी कुर्सी से उठे, और कुँवर वीरसिंह को लेकर अपने शयनागार में चले गए। वहां उन्होंने एक लड़की को देखा, जिसे देखकर वह वहीं ठिठक गए। फिर उन्होंने शरमाकर निगाहें नीची कर लीं और वीरसिंह से कहा—

"कुँवर जी यह कौन है, और हमारे कमरे में क्या कर रही है?"

कुँवर जी ने मुस्कराकर कहा—"हुजूर यह भी आपकी प्रजा ही है, आपकी सम्पत्ति है। इसका नाम बेगम है, इसका बाप हुजूर के बागों में माली का काम करता है।

राजकुमार बड़े शर्मीले थे। उनके बारे में सारी जागीर में यह प्रसिद्ध था कि राजकुमार कभी औरतों की ओर निगाह भरके नहीं देख सकते। राजा साहब के मित्रों की मन्त्रणा से कई बार उन्हें योनि-वासना को निमन्त्रण के लिए उकसाया गया। किन्तु हमेशा राजकुमार ने टाल दिया। लाचार राजासाहब ने तंग आकर राजकुमार की सगाई कर दी। अगले माह शादी थी और अब राजासाहब को यही चिन्ता थी कि कहीं राज्याधिकारी राजकुमार बेचारे दूसरे राज्याधिकारियों की तरह नपुंसक साबित न हों। इसी चिन्ता में उनकी जान घुली जा रही थी। भला हो कुँवर वीरसिंह का। उन्होंने राजासाहब के सामने इस शिकार का प्रस्ताव रखा, और अपने प्रोग्राम को कुँवरजी ने उन्हें बताया। राजासाहब राजी हो गए। इसीलिए अब यह लड़की राजकुमार के शयनागार में मौजूद थी।

राजकुमार बोले—"तुम्हें मालूम है, अगले मास मेरी शादी होने वाली है?"

कुँवर वीरसिंह हंसकर बोले—"तो इसमें क्या है हुजूर! जरा अभ्यास ही हो जाय........" फिर उसने रुककर कहा—"जरा निगाह उठाकर तो देखिये हुजूर, कैसा सुन्दर फूल लाया हूँ।"

राजकुमार ने निगाह उठाकर देखा। यह तो मैं कह चुका हूँ कि बेगम बहुत सुन्दर थी !

राजकुमार के प्रोग्राम में नन्दलूर का पड़ाव दो दिन का था, राजकुमार वहाँ सात दिन रहे ; और सात दिनों तक यासीन स्टेशन पर अपनी बेटी से मिलने के लिए आता रहा, किन्तु उसे किसी ने उसकी बेटी से न मिलने दिया। वह उस दिन भी सदा की तरह बाग में काम कर रहा था कि किसीने उससे आकर कहा—"तेरी बेटी को राजा साहब के आदमी उठाकर ले गए हैं। जब वह तालाब से नहाकर वापस आ रही थी, तब मैंने उसकी चीखें सुनीं। मैंने देखा, राजा साहब के आदमी उसे पकड़कर, कन्धे पर उठाकर, घोड़े पर सवार कराकर चले गए। बेगम तेरा नाम ले-लेकर रो रही थी और चीख रही थी। मगर अब क्या हो सकता है ? तू मेरी बात माने तो चुप हो जा, अधिक शोर मचायगा तो अपनी नौकरी से भी हाथ धो बैठेगा।"

परन्तु यासीन ने दूसरे माली की सलाह नहीं मानी, और वह नंदलूर स्टेशन पर चीखता-चिल्लाता हुआ और स्पेशल सेलून के आस-पास चक्कर काटता रहा। मगर स्पेशल सेलून की सारी खिड़कियाँ बन्द थीं, इसलिए बाहर की चीख अन्दर नहीं जा सकी और अन्दर की सिसकी बाहर न सुनाई दे सकी। और जब उसके बाद यासीन ने व्याकुल होकर बहुत शोर मचाया तो कुंवर वीरसिंह और उसके आदमियों ने यासीन को खूब अच्छी तरह से पीटा, और उसे अधमरा करके उसकी झोंपड़ी में डाल आए।

वहाँ यासीन दो दिनों तक बेहोश पड़ा रहा, मगर मरा नहीं। तुम जानते हो ये किसान कितने वज्र-प्राण होते हैं। उनकी हड्डी बड़ी तगड़ी और मजबूत होती है। बुड्ढा बच गया। लेकिन उसका दिमाग चला

गया। चुनांचे चौथे रोज जब वृद्ध फिर स्पेशल सेलून के आगे आया तो उसके हाथों में गुलाब के फूलों से भरी हुई एक टोकरी थी, और वह धीमे-धीमे स्वर में बार-बार कह रहा था—"मेरी बेगम को मेरे सामने ला दो, मैं उसे गुलाब के फूल दूंगा, गुलाब के फूल......"

फिर वह स्पेशल सेलून की प्रत्येक खिड़की के सामने जाकर कहता—"बेगम, क्या तू अन्दर है? देख मैं तेरे लिए गुलाब के फूल लाया हूं।" उस दिन से यासीन का यह नियम हो गया था कि दिन-भर स्पेशल सेलून के चारों ओर चक्कर लगाता रहता, और रात को अपने झोंपड़े में जाकर पड़ रहता, और जब सुबह होती तो फिर फूलों की टोकरी हाथ में लिये हुए स्टेशन पर आ पहुँचता। राजा साहब के कर्मचारी उसे मारते-पीटते, गालियाँ देते, डराते-धमकाते, उसका मज़ाक उड़ाते, किन्तु उस पर किसी बात का असर नहीं होता। वह किसी बात का बुरा नहीं मानता, बल्कि बड़ी मधुरता और कोमल स्वर में कर्मचारियों से कहता—"बेगम, बेगम को अन्दर से बुला दो, मैं उसको यह फूल दूंगा, और फिर चला जाऊँगा।"

यह सुनकर राजा के आदमी फिर ज़ोर-ज़ोर से हँसने लगते।

सातवें रोज़ स्पेशल सेलून भी चला गया, और उसके साथ यासीन के जीवन की अन्तिम आशा भी चली गई।

पादरी चुप हो गया। मैंने देखा गाड़ी नंदलूर के प्लेटफार्म से धीरे-धीरे बाहर निकल रही है, और वह सफेद दाढ़ीवाला वृद्ध अपने हाथ में गुलाब के फूलों की टोकरी लिये हुए प्लेटफार्म के आखिरी कोने पर सिर झुकाये खड़ा है।

पादरी ने मुँह फेरकर भर्राये स्वर में कहा—"उस दिन से यह बुड्ढा प्रतिदिन यहाँ आता है और प्रत्येक गाड़ी के प्रत्येक डब्बे में झाँककर पूछता है—"क्या बेगम अन्दर है? मैं उसके लिए फूल लाया हूँ।"

डब्बे में बड़ी देर तक खामोशी रही। गाड़ी अब नंदलूर से आगे निकलकर घने जंगलों से गुजर रही थी। गोरे पादरी ने उँगली के इशारे से मुझे बताया—"यही राजा पीतमपुर के जंगलात हैं। बहुत दूर तक उधर पश्चिम में निजाम हैदराबाद की रियासत के अंदर उन पहाड़ी चोटियों से परे तक यह जंगल फैले हुए हैं। इन जंगलों में जंगली जानवर बहुत बड़ी संख्या में पाये जाते हैं और ये जानवर इतने दिलेर हैं कि आस-पास के गाँव से,और एक बार तो इस स्टेशन से एक स्टेशन मास्टर को उठाकर ले गए थे। बड़े खूँखार चीते होते हैं इस जंगल के......"

मैं राजा साहब के जंगलों की ओर देखने लगा। छोटी-छोटी मनुष्यों की आबादियों के आस-पास कोसों तक फैले हुए भयानक जंगल। यह मद्रास प्रान्त से हैदराबाद तक फैले हुए विशाल जंगल, जिनके बीच में एक फूल कैद है। क्या यह फूल कभी आजाद नहीं हो सकेगा? मैंने निगाह उठाकर उन विस्तृत जंगलों की ओर देखा, जिनके बीच में गाड़ी भागी जा रही थी। यह जगह नीची भूमि पर थी और जंगल पश्चिम की ओर ऊँची पहाड़ियों पर फैलते जा रहे थे—राजा साहब के भयानक जानवरों वाले जंगल। पहाड़ियों की दूसरी ओर हैदराबाद की सीमा थी वहां भी यह जंगल फैलते हुए चले गए थे। उनसे परे.......उनसे परे तैलंगाना था। मैंने सोचा, एक दिन यह फूल जरूर आजाद होगा। तैलंगाना के हाथ, और कवियों के हृदय इस जंगल को जरूर फतह करेंगे—वह फूल जो मनुष्य की आत्मा के चारों ओर सुगन्ध बनकर व्याप्त है।

-

कुछ क्षणों की खामोशी के बाद गोरा पादरी बड़े दुखी स्वर में कहने लगा—" आजकल शिकार में मजा नहीं रहा।"

"क्यों ?" मैंने पूछा।

"शिकार के लिए हाँकिये नहीं मिलते। पहले बहुत मिलते थे। अब दुगने दामों पर थोड़े-बहुत हाँकिये मिलते हैं; और तुम जानते हो हाँकियों के बिना शिकार में आनन्द नहीं आता। अब किसानों को अपनी जान प्यारी हो गई है। वह शिकार पर हाँकिये का काम करना पसन्द नहीं करते।"

मैंने पूछा—"फादर, तुम्हें शिकार का बहुत शौक है ?"

उसका गोल-गोल बच्चों-जैसा चेहरा खिल उठा और बोला—"श्रीमंदोम्न।"

मैंने कहा—"फादर, तुम फ्रांसीसी हो या इटली-निवासी ?"

वह बोला—"मैं डच हूँ, मुझे यहाँ आये हुए तीस साल हो गए।"

"तीस साल ! इसी भाग में बीत गए ?" मैंने गाड़ी से बाहर के क्षेत्र की ओर इशारा किया।

वह सिर हिलाकर बोला—"हाँ, मुझे यह जगह बहुत पसन्द है; यहाँ शिकार बहुत अच्छा मिलता है; रीछ, शेर, चीते, हिरन, सूअर, हर तरह का शिकार मिलता है। अगर नहीं मिलता है, तो बस एक हाथी नहीं मिलता इस क्षेत्र में।"

मैंने कहा—"फादर, तुम गलत कहते हो, हाथी तो यहां भी मिलता है। मगर तुमने कभी उसका शिकार करने का प्रयत्न ही नहीं किया। तुम हमेशा गरीब जानवरों का शिकार करते रहे और हाथियों को जंगलों में अकेला छोड़ दिया; वरना हाथी तो हिन्दुस्तान में भी मिलता है। और नीचे जाओ तो सीलोन में भी मिलेगा, बर्मा में भी और मलाया में भी। हाथी इंडोनेशिया में भी मिलता है। मगर वहां उसका रंग सफेद होता है। लोग कहते हैं कि सफेद हाथी बड़ा पवित्र होता है और बड़ी कठिनाई से मिलता है। मगर मेरा तो खयाल है कि एशिया का कोई देश ऐसा नहीं जहां यह सफेद हाथी न मिलता हो। हद तो यह

है कि अब यह सफेद हाथी अरब, ईराक, सीरिया और फिलिस्तीन के रेगिस्तानों में भी मिलने लगा है। जहाँ-जहाँ तेल के चश्मे हैं, लोहे की खानें हैं, रबड़ और चाय के बगीचे हैं, वहाँ-वहाँ यह सफेद हाथी पाया जाता है।"

डच पादरी का रंग उड़ गया, उसका चेहरा बिल्कुल सफेद हो गया, उसके होंठ सख्ती से अन्दर को भिंच गए। उसने जल्दी से लटकती हुई सलीब को पकड़ लिया और मेरी ओर घृणा से देखकर मुँह फेर लिया।

सांवले रंग के पादरी ने कहा—"तुम्हें फादर से ऐसे शब्द कहने का कोई अधिकार नहीं था।"

मैंने बड़ी कोमलता से कहा—"मैंने फादर की शान में कोई धृष्टता नहीं की, मैं तो हाथियों की बात कर रहा था।"

रास्ते में एक स्टेशन आ रहा था। पादरियों को अभी आगे उतरना था मगर वे दोनों यहीं उतर गए। गाड़ी से उतरते हुए सांवले रंग के पादरी ने मेरी ओर विष-बुझी निगाहों से देखा।

मुझसे नहीं रहा गया, इसलिए मैंने कहा—"अब जाते हो तो यह भी सुनते जाओ कि पहले तो सफेद हाथी और काले हाथियों में हमेशा लड़ाई रहा करती थी। दोनों अलग-अलग अपने झुण्ड बनाकर जंगल में घूमा करते थे। मगर अब सुना है कि आजकल काले और सफेद हाथियों में बड़ी मिली-भगत हो गई है, और दोनों एक दूसरे के गले में सूँड डाले एशिया के जंगलों में घूम रहे हैं।"

डच पादरी और देशी पादरी सूटकेस उठाये हुए मेरी खिड़की के सामने से गुजर गए। मैंने बच्चों की तरह चिल्लाकर कहा—

"श्रीमंदोस!"

त्रिचूर जाने के लिए गाड़ी 'अरकुनम्' से बदलनी पड़ती है। कोचीन एक्सप्रेस या मालाबार एक्सप्रेस जो मद्रास से आती है, उसमें बैठकर 'शोनूर' तक जाते हैं। शोनूर से फिर एक दूसरी लाइन पड़ती है, जो कोचीन बन्दरगाह की दिशा को जाती है। त्रिचूर इसी रास्ते में पड़ता है, और यहां से कोचीन बन्दरगाह की यात्रा रेल से दो घण्टे की होगी।

एक रात और यात्रा में कट गई। कोई खास घटना नहीं घटी। केवल 'गूटी' के मुकाम पर यह देखा कि स्टेशन पर लड़के बिरयानी को सफेद लिफाफों में बंद करके बेच रहे हैं। मैंने बिरयानी का एक लिफाफा खरीद लिया और उसे खोलकर देखा तो मालूम हुआ कि इस बिरयानी में चिकनाहट तो कम है, हां, खुश्की बहुत अधिक है; और अगर उसे किसी तरकारी के साथ मिलाकर न खाया जाय तो बाद में गले में ऐसे मालूम होता है जैसे किसी ने पान में चूना अधिक लगा दिया हो। खैर यही थी कि मैंने दूसरा खाना भी मंगवा लिया था, वरना शायद मैं बिरयानी को फेंक देता और खाली कागज का लिफाफा खाने पर मजबूर हो जाता।

शोनूर से त्रिचूर जाते हुए समुद्र-तट बहुत निकट आ जाता है, इसलिए नारियल के ऊँचे-ऊँचे पेड़ जगह-जगह घाटियों, वादियों, खेतों, दरियाओं और नदी-नालों के किनारे-किनारे अपने सुन्दर पंख फैलाये हुए दिखाई देते हैं। नीले पानी के तालाब, धान के खेतों की हरियाली और साफ-सुथरे मालाबारी ढंग के मकान नारियल के रेशों से छते हुए बड़ा सुहावना दृश्य उपस्थित कर देते हैं।

शोनूर से मेरे डब्बे में दो मुसलमान व्यापारी आकर बैठ गए, जो कोचीन बंदरगाह में व्यापार करते हैं। उनके बाद एक वैभवशाली मद्रासी वृद्ध ने प्रवेश किया। उसने एक बढ़िया रेशमी सूट पहन रखा था। हाथ में एक चांदी की मूठवाली छड़ी थी और दाहिने हाथ की उँगलियों में हीरे की अँगूठियाँ थीं।

दोनों मुसलमान व्यापारी और वह वृद्ध मद्रासी मलयालम में बातचीत करने लगे। ऐसा मालूम होता था कि एक-दूसरे का परिचय प्राप्त करने को कोशिश कर रहे हैं। जब वह लोग एक दूसरे की वंशावलि पूछकर निबटे तो मेरी ओर आकर्षित हुए। एक व्यक्ति ने मलयालम भाषा में मुझसे कुछ कहा।

मैंने अंग्रेजी में बताया—"मैं यह भाषा नहीं जानता।"

वह आदमी चौंका, फिर मुस्कराकर कहने लगा—"क्षमा करिए, मैं आपको 'अलप्पी' का रहनेवाला समझ रहा था।"

मैंने कहा—"मुझे इस शहर के देखने की अभिलाषा है।"

वह बोला—"मैं अलप्पी का रहने वाला हूँ—अलप्पी जो हिन्दुस्तान का 'वेनिस' है।"

वृद्ध आदमी अपनी छड़ी अपनी सीट के साथ टिकाते हुए बोला—"मैं भी अलप्पी का रहने वाला हूँ।"

नवयुवक मुस्लिम व्यापारी से मैंने पूछा—"आप क्या व्यापार करते हैं?"

वह बोला—"मैं एल. एल. बी. में पढ़ता हूँ, और साथ में अपने भाई (दूसरे आदमी की ओर इशारा करके) के साथ व्यापार करता हूँ।"

"क्या व्यपार?"

"हार्ड वेयर (Hardware)

"आप क्या व्यापार करते हैं?"

मैंने कहा—"सॉफ्ट वेयर (Software)।"

वह हँसा—"यह सॉफ्ट वेयर क्या होता है?"

मैंने कहा—"आप लोहे का व्यापार करते हैं न, मैं कलम का व्यापार करता हूँ।"

बड़े भाई ने कहा—"ओहो, तो आप फाउन्टेनपैन बेचते होंगे?"

मैंने कहा—"यही समझ लीजिए।"

बड़ा भाई बोला—"कुछ भी हो साहेब, अब व्यापार में वह फायदा नहीं रहा। कम्बख्त मजदूरों का दिमाग़ ही बिगड़ गया है।"

वृद्ध बोला—"अलप्पी में मेरा एक कारखाना है, वहां भी यही हाल है।" फिर मेरी ओर झुककर कहने लगा—"यह सब कुछ........ कम्युनिस्टों का किया-धरा है। क्यों साहब ?" उसने मुझसे पूछा।

मैंने कहा—"आप ठीक कहते हैं।"

"मगर मेरा बेटा कहता था........," वह वृद्ध फिर कहने लगा—"मेरा बेटा कहता था कि हम इन लोगों को ठीक कर देंगे। और मेरा बेटा, आप जानते हैं, कौन है ?"

"कांग्रेसी है ?" मैंने पूछा।

"नहीं।"

"हिन्दू महासभाई ?"

"नहीं, नहीं।"

"तो आर. एस. एस. वाला होगा ?"

"नहीं साहब, मेरा बेटा मिलिटरी में सैक्रेटरी है। आप क्या बात करते हैं ?"

"और," मैंने कहा—"क्षमा करिए, मगर यह आप गलत कहते हैं। भला मिलिटरी को राजनीति से क्या काम ?"

वृद्ध बोला—"मगर कम्युनिस्टों को दबाने में राजनीति कैसी ? यह तो सीधी-सादी बात है। मेरा कारखाना उन मजदूरों की हड़ताल से बंद हुआ जा रहा है।"

बड़ा भाई बोला—"मेरे व्यापार में भी वे गड़बड़ मचा रहे थे, मैंने सबको निकालकर दूसरे मजदूर रख लिए। अब सुना है फिर गड़-बड़ होनेवाली है। मुझे कल ही मद्रास में तार मिला, और मैं आज ही कोचीन वापस जा रहा हूँ। यह गवर्नमेंट भी कुछ नहीं करती। क्यों साहब ?" उसने मुझसे पूछा।

मैंने कहा—"आप ठीक कहते हैं।"

"देखिए," व्यापारी बोला—"अभी सरकार ने नारियल बाहर भेजना बंद कर दिया। विलायत में नारियल का भाव पांच सौ रुपया टन से ऊपर है, और यहां ढाई सौ रुपया है। हमें ढाई सौ रुपया प्रति टन नुक्सान हो रहा है।"

मैंने कहा—"बर्मा में नारियल का भाव डेढ़ सौ रुपया टन है। इस हिसाब से आपको एक सौ रुपया प्रति टन अधिक मिल रहा है।"

"मैं बर्मा की बात नहीं कर......."

मैंने उसकी बात काटकर कहा—"और मलाया में पचहत्तर रुपया प्रति टन है, और सिंगापुर में पचास रुपया प्रति टन और अगर आप होनोलूलू चले जायं तो वहां आपको इतने नारियल मुफ्त मिलेंगे कि आप उससे अपनी कब्र ताजमहल के रोजे से भी बड़ी बना सकते हैं। आया आपकी समझ में।"

बड़ा भाई चौंका; उसने चौंककर छोटे भाई की ओर देखा। छोटे भाई ने वृद्ध मद्रासी की ओर देखा। वृद्ध मद्रासी ने मेरी ओर इस प्रकार देखा जैसे मुझे बिरादरी से खारिज कर दिया हो; और अगर उनका बस चलता तो वह मुझे उस डब्बे से भी खारिज कर देते। मगर वह तो खैरियत हुई कि त्रिचूर का स्टेशन शीघ्र आ गया, जहां कि मुझे उतरना था।

आज त्रिचूर के छोटे-से स्टेशन पर बड़ी भीड़ थी; कोई डेढ़ सौ के करीब वालंटियर सुर्ख बिल्ले लगाये हुए थे। मुझे देखकर कुछ साथियों ने मुझे पहचान लिया और स्वागतम् के नारे लगाने लगे। फिर वातावरण में इन्कलाब-जिन्दाबाद की आवाज सुनाई देने लगी। जब मैं गाड़ी से उतरा तो लोगों की भीड़-भाड़ में केवल एक बार अपने सहयात्रियों की ओर देख सका, जो अब बड़े आश्चर्य से मेरी ओर देख रहे थे।

फिर मैंने केवल इतना सुना कि छोटा भाई बड़े भाई से कह रहा था—"यह भी वही है......."

इतना कहकर उन्होंने खिड़की बंद कर ली और हमारी ओर पीठ मोड़कर बैठ गए, लेकिन इन्कलाबी नारे पानी के तूफानी रेलों की तरह बराबर डब्बे के अन्दर सुनाई दे रहे थे।

इन्कलाब जिन्दाबाद !

प्रगतिशील लेखक संघ जिन्दाबाद !!

मजदूरों और साहित्यिकों की एकता जिन्दाबाद !!!

हार्ड वेयर का व्यापार करनेवाले हमारी ओर पीठ मोड़कर बैठ गए थे और अब कभी-कभी कनखियों से हमारी ओर देख लेते थे। उनकी चोर निगाहों का सहमा-सहमा भाव उनके परेशान दिलों की घबराहट प्रकट कर रहा था। हार्ड वेयर का व्यापार करने वाले सॉफ्ट वेयर वालों के सामने अपराधियों की तरह खामोश और निराश थे। वातावरण में साथियों के नारे थे, और मेरे दिल में इकबाल का वह मिसरा........

"फूल की पत्ती से कट सकता है हीरे का जिगर।"

धीरे-धीरे मैं अपने साथियों के साथ स्टेशन से बाहर निकला। मैं दक्षिणी-भारत में पहली बार आया था। लेकिन अजीब बात तो यह थी कि यहां आकर मुझे एक क्षण के लिए भी अजनबीपन और एकाकीपन का अनुभव नहीं हुआ। मेरे चारों ओर हर्ष से खिले हुए चेहरे थे, और मैं उन्हें और वह मुझे इस प्रकार देख रहे थे जैसे कि हम एक-दूसरे को हमेशा-हमेशा से जानते हैं। ऊपरी तरह से नहीं, परिचितों की तरह नहीं, साधारण मित्रों की तरह भी नहीं जानते, बल्कि हृदय की एक ऐसी आकर्षण-शक्ति से जानते हैं जैसे सदा से मेरा जीवन उनका है, और उनका जीवन मेरा हो चुका है।

★★★

त्रिचूर एक छोटा-सा रियासती शहर है; आबादी सत्तर हज़ार से अधिक नहीं होगी। इमारतों में प्राचीन बनावट की झलक है। शहर के मध्य में शिवजी का मंदिर है और उसके आस-पास एक पार्क है, जहां आजकल एक 'फ्रीलेंड' कम्पनी आकर ठहरी है। इसके अहाते में नाच-गाना और जुआ होता है और रात के दो बजे तक फिल्मी गानों की आवाज़ सुनाई देती रहती है।

कहते हैं त्रिचूर पहले 'सागोन' का एक बहुत बड़ा जंगल था। फिर किसीने यहां शिवजी का मंदिर बनवाया। यह शहर इसके आस-पास बसना आरम्भ हुआ। अब भी प्रत्येक वर्ष शिवजी के मन्दिर पर मेला लगता है, जहां आस-पास के गाँवों से कई लाख यात्री जमा होते हैं। इससे मन्दिर के पुजारियों को हज़ारों रुपये चढ़ावे के मिल जाते हैं, और शहर का व्यापारी-वर्ग भी मालामाल हो जाता है। यहां का व्यापार अधिकतर ईसाइयों के हाथ में है। और ईसाई बूर्जुआ जी को ही यथार्थ में त्रावंकोर और कोचीन का शासक-वर्ग समझना चाहिए।

मसीह धर्म का इतिहास रियासत त्रावंकोर और कोचीन में बहुत पुराना है। यहां यह धर्म यूरोपीय हमलावरों के साथ नहीं आया, बल्कि उससे बहुत पहले ईसाई धर्म-प्रचारक यहां आकर मसीह धर्म का प्रचार करने लगे थे। यहां एक गिरजा नौ-सौ वर्ष पुराना है। कहते हैं सबसे पहला ईसाई धर्म-प्रचारक, जिसने दक्षिणी भारत में पांव रखा, वह स्वयं यीशू मसीह के चेले संत थामस थे, जिनका गिरजा आज भी यहां मौजूद है। प्राचीन युग में यहां के समुद्र-तटीय क्षेत्रों से जहाज फिलिस्तीन

और रोम तक जाते थे। पुरानी बाइबिल में शाह सुलेमान के महल की जो चर्चा है, वह पूर्व से लाई गई सागोन की लकड़ी से बनाया गया था। उसके बारे में अनुमान है कि वह मालाबार के सागोन की ही लकड़ी थी, जो वहां उपयोग में लाई गई होगी। इससे कम-से-कम यह पता अवश्य चलता है कि दक्षिणी भारत का सम्बन्ध मसीही जगत से कोई नया नहीं, कई सौ वर्ष पुराना है। इस बात की पुष्टि इस बात से भी होती है कि उत्तरी भारत में अधिकतर ईसाइयों के रहन-सहन का ढंग आज भी अजनबी मालूम होता है, किन्तु दक्षिणी भारत में ऐसा नहीं मालूम होता, क्योंकि इन लोगों के रहन-सहन के तरीके और भाषा नहीं बदली। हद तो यह है कि गिरजों की बनावट में भी भारतीय झलक दिखाई देती है। जैसे दक्षिणी भारत के मन्दिर के बाहर, एक 'कोडीमरम्' यानी झंडा लहराने वाला ऊंचा खम्बा होता है। इसी प्रकार बहुत-से गिर्जाओं के बाहर उसी ढंग का कोडीमरम् पाया जाता है। यह विशेषता मैंने उत्तरी भारत के गिरजाओं में नहीं देखी। इसके अलावा आपको शहरों और गांवों में छोटे-छोटे शिवालयों की भांति यहां भी आपको गली-कूचों के नुक्कड़ पर छोटे-छोटे गिरजा मिलेंगे, जिनके सिरे पर यदि सलीब न हो तो आप उन्हें बिल्कुल शिवालय ही समझें।

कोचीन और त्रावंकोर की आबादी में ईसाइयों का भाग तीस प्रतिशत से कम न होगा। पढ़े-लिखों की संख्या कोचीन और त्रावंकोर में हिन्दुस्तान में सबसे अधिक है, यानी कोई पचास प्रतिशत। सामाजिक ढांचा चूंकि वही पुराना है, इसलिए पढ़ने-लिखने के पश्चात् भी मनुष्य गरीब हैं; हां, चर्च अमीर हैं। ज़ोर अधिकतर रोमन केथॉलिक वर्ग का है। और दूसरे चर्च भी हैं, जिनमें धड़ेबन्दी और मुकद्दमेबाजी तक भी होती है, जिनमें जनता की सम्पत्ति बरबाद होती है। हर वर्ष नये गिरजे बनवाये जाते हैं या पुराने गिरजों में कोई-न-कोई बढ़ोतरी होती रहती है। अनुमान लगाया गया है कि एक अच्छे गिरजे पर कम-से-कम पांच लाख रुपया खर्च होता है। यह रुपया भी जनता की

जेब से निकलता है। जनता जो कमाती है उसका आधा भाग चर्च की भेंट होता है। कुछ भाग जागीरदार और शासन की भेंट चढ़ाया जाता है। कुछ कर्ज के रूप में चुकाया जाता है। जो बच रहता है वह गुजारे के लिए बिलकुल ही अपर्याप्त होता है। कुछ क्षेत्रों में तो गरीबी इतनी अधिक है कि देखा नहीं जाता। लेकिन इन क्षेत्रों में भी गिरजा बड़े शानदार हैं, और पादरी और बिशप भी बड़े मोटे-ताज़े दिखाई देते हैं।

बूर्ज़ुआ चाहे ईसाई हो या हिन्दू या मुसलमान, रहता वह बूर्ज़ुआ ही वर्ग में है। वह हमेशा अपने वर्ग की सारी विशेषताओं को प्रकट करता है। इसका एक उदाहरण आपको त्रिचूर में मिलेगा। कुछ साल हुए यहां शिवजी के मन्दिर में दो दल हो गए। झगड़ा धार्मिक नहीं था, चढ़ावे के बटवारे पर था। परिणाम यह हुआ कि पुजारियों में चल गई। खूब सर-फुटौवल हुई। अंत में यह फैसला किया गया कि जब तक चढ़ावे का फैसला नहीं होता, वार्षिक मेला भी बन्द रखा जाय। स्पष्ट है कि इस बात से ईसाइयों के दर्शन-शास्त्र को कोई नुकसान नहीं पहुँचता था। लेकिन ईसाई बूर्ज़ुआ वर्ग के व्यापार पर बड़ा असर पड़ता था। क्योंकि यह लोग हिन्दुओं के इस प्रसिद्ध मेले के दिनों में लाखों रुपया कमा लेते थे, इसलिए इस वर्ग के प्रमुख व्यक्ति मन्दिर के पुजारियों से मिले ; उनका समझौता कराया। इसके अलावा मन्दिर को बीस हज़ार रुपया चढ़ावा दिया, और पुजारियों को मजबूर किया कि वह इस साल भी वार्षिक मेला करें और इस सम्बन्ध में जो दूसरे खर्च होंगे, उसे भी यह लोग सहन करेंगे। फलस्वरूप मेला हुआ और यात्रियों ने लाखों की संख्या में शिवजी महाराज के दर्शन किये, और मेला लगवाने वालों ने लाखों की संख्या में रुपया महाराज के दर्शन किये। इसमें बुराई भी क्या है? जब तक धर्म और मज़हब के सहारे जनता को लूटा जा सकता है, तब तक गोली चलाने की क्या ज़रूरत है? गोली तो उस समय चलाई जाती है, जब पूँजीवाद को अपना मुनाफ़ा खरा होने का और कोई तरीका समझ में नहीं आता।

इस त्रिचूर में मलयालनी भाषा के प्रगतिशील लेखकों की कॉन्फ्रेंस अट्ठारह दिसम्बर से आरम्भ हो रही थी। ट्रावंकोर और कोचीन के विलीनीकरण के बाद भी केरल के क्षेत्र का एक भाग मद्रास प्रान्त में रह गया था, लेकिन जब राष्ट्र और भाषा एक हो तो इस प्रकार की भौगोलिक हदबन्दी अधिक समय तक जन-आन्दोलन के आगे नहीं ठहर सकती। संयुक्त केरल की आवाज़ केरल के कोने-कोने से उठ रही है, और यह आवाज संयुक्त मजदूरों और किसानों के आन्दोलन की आवाज है। इसलिए विश्वास होता है कि जनवादी केरल बनकर ही रहेगा, और मालाबार का वह क्षेत्र भी उसके साथ आयगा जो अभी तक मद्रास प्रांत में है और जहाँ आज भी अँग्रेजी युग की स्पेशल पुलिस नियुक्त है, और जहां आज भी केरल के बहादुर सपूत इन तमाम कठिनाइयों का साहस से मुकाबला करते हुए, अपने घरों, अपनी धरती, और अपनी बहू-बेटियों की मर्यादा की रक्षा कर रहे हैं।

इस कोन्फ्रेंस में उत्तरी-मालाबार के बहादुर किसान और मज़दूर साहित्यकार शामिल होने के लिए आये थे। ट्रावंकोर और कोचीन और उत्तरी-मालाबार के साहित्यकार, विद्यार्थी, जर्नलिस्ट, मज़दूर और किसान जो अपने-अपने मोरचे पर लड़ते हुए भी साहित्य का निर्माण करते रहते थे, और उसे अपने देश की सामाजिक परिस्थितियों और आन्दोलन का प्रमुख भाग समझते थे, वह लोग जो साहित्य-निर्माण शौकिया नहीं करते थे, जैसे कि बटेरबाजी शौकिया की जाती है, बल्कि इसे जीवन की प्रमुख आवश्यकता समझकर और जनता के संघर्ष में उसके महत्व और लाभ का अनुभव अपने हृदय में रखते हुए, साहित्य को अपने हृदय के रक्त से सींचते थे।

कॉन्फ्रेंस का आरम्भ शहर के भव्य टाउन हॉल में हुआ। पहले दिन प्रतिनिधियों की संख्या छः सौ के करीब थी। सबसे पहले मैंने अखिल भारतीय प्रगतिशील लेखक संघ की ओर से एक संदेश पढ़कर सुनाया। इसके बाद साथी अच्युत कुरूप ने मलयालम भाषा में अपने सभापति पद के भाषण में स्थानीय स्थिति का विश्लेषण किया। इससे कुछ महीने पहले केरल के साहित्यिकों की एक और कॉन्फ्रेंस हो चुकी थी, जिसमें प्रगतिशील लेखक संघ के घोषणा-पत्र के ऊपर बहस की गई थी। किन्तु वह बहस किसी निर्णय पर नहीं पहुँच सकी। घोषणा-पत्र के सम्बन्ध में कोई फैसला नहीं हो सका और घोषणा-पत्र के सम्बन्ध में सोच-विचार करने के लिए जो कमेटी कायम की गई थी, उसने कोई काम नहीं किया और मामले को इस तरह छोड़ दिया कि पूरे केरल में संघ का काम करीब-करीब ख़त्म हो गया। इस स्थिति को सुधारने के लिए यह कॉन्फ्रेंस बुलाई गई थी, ताकि प्रगतिशील लेखक संघ के आंदोलन को फिर से संचालित किया जा सके, और उसका नाता जन-आंदोलनों से पक्का किया जा सके। विचार था कि इस सम्बन्ध में बहुत-सी कठिनाइयां उत्पन्न होंगी और प्रतिक्रियावादियों से, जो संघ को निकम्मा बनाये रखना चाहते थे, उनसे जबरदस्त मुकाबला करना होगा।

प्रतिनिधियों में कुछ ऐसे जीव भी थे जो संघ के नये घोषणा-पत्र को और उसकी शक्तिशाली परम्परा को पसंद नहीं करते थे। कुछ ऐसे पुराने 'कृपानिधान' भी थे, जो अपने गन्दे अंडे के खोल में रहकर, साहित्य केवल साहित्य के लिए निर्माण करना चाहते थे। इसका उदाहरण वह व्यावहारिक रूप में इस तरह पेश करते थे कि वे गन्दी-गन्दी योनि-वासना की कहानियां लिखते और उसी प्रकार की कविता भी करते, जिसे पढ़ते समय मनुष्य को गुसलखाने का विचार आता है। इनमें से एक सज्जन वह थे, जिन्होंने एक गरम कुतिया और उसके मालिक की अव्यवहारिकता की कहानी लिखी थी और वह इसे प्रगतिशीलता की

सनद समझते थे। यह बेहूदा हरकतें उस समय हो रही थीं जब किसान भूख से मर रहे थे और अपना अनाज, अपने परिश्रम से पैदा किया हुआ अनाज, अपने घर में रखने के लिए जागीरदारों, ज़मींदारों और पूँजीपतियों से लड़ रहे थे, और उनके राज्य के शोषण के हथकण्डों का मुकाबला अपनी संयुक्त शक्ति से कर रहे थे। एक ओर शहीदों का खून था, दूसरी ओर कुत्ते-कुतियावाली कविता थी। लेखकों को अपना रास्ता चुनना था। यह कॉन्फ्रेंस इसी उद्देश्य से प्रेरित होकर बुलाई गई थी।

साथी अच्युत कुरूप ने कई घंटे भाषण दिया। वह नये घोषणा-पत्र के समर्थन में बोले, और बड़ी जीदारी से बोले। कुरूप कद का मझोला, दुबला-पतला सांवला है, घनी भौंहों के नीचे छोटी-छोटी आंखें बुद्धिमत्तापूर्ण व्यंग्य से चमकती हैं। यही व्यंग्य उनके भाषण में भी झलकता है। वह भाषण देते में सुननेवालों पर कभी रोब बिठाने की कोशिश नहीं करते, बल्कि हंसाते हुए उन्हें अपने साथ ले जाते हैं। उनका विश्लेषण मार्क्सवादी और व्यंग्य से भरपूर होता है। वह इसी प्रकार कई घंटे भाषण दे सकते हैं, क्योंकि उनके पास कहने को बहुत कुछ है। हिन्दू देवमाला के उन्हें बहुत-से पुराने दृष्टांत याद हैं, जिनका मिलान वह तोड़-मरोड़कर नई स्थितियों से करते रहते हैं। इस प्रकार के उदाहरण दक्षिणी भारत के निवासियों के लिए (जो अपनी देवमाला से काफी घनिष्ठता रखते हैं) बड़े प्रभावशाली साबित होते हैं, और एक कील की तरह उनके दिमाग़ में गड़ जाते हैं। इनके एक-दो दृष्टांत मुझे याद रह गए हैं। अपने लम्बे भाषण के दौरान में प्रगतिशील साहित्य के भिन्न-भिन्न पहलुओं पर बहस करते हुए कुरूप ने कहा—"हम लोग अपने साहित्य में सैद्धान्तिक सचाई और सांस्कृतिक विकास पर बड़ा जोर देते हैं और देते रहे हैं। लेकिन इसी अरसे में हम अपने असली दुश्मन, यानी शोषण करनेवाले वर्ग को, जो शासन पर बैठा है, बिलकुल भूल जाते हैं और ऐसा साहित्य-निर्माण नहीं

करते, जो उसका घूंघट उतारने में सफल हो। इसको विस्तारपूर्वक समझाते हुए कुरूप ने एक ईसाई का किस्सा सुनाया, जिसे सड़क पर किसीकी एक गाय मिल गई और वह उसे अपने घर ले जाना चाहता था। गाय के गले में एक लम्बा रस्सा था। ईसाई पहले तो उसे उस लम्बे रस्से से खींचता हुआ अपने घर ले चला। फिर उसे पाप का विचार आया, तो वह बूझकर उस गाय को उसी लम्बे रस्से से खींचता हुआ पादरी के पास ले गया। पादरी बेचारा बड़ा धार्मिक और भला था। उसने ईसाई को सलाह दी कि वह सड़क पर जाकर जहां उसे गाय मिली थी, जोर-जोर से आवाज देकर गाय के मालिक को सात बार पुकारे, और अगर फिर भी मालिक का पता नहीं चले तो वह फिर गाय को अपने घर ले जा सकता है।

"फलस्वरूप उस ईसाई ने ऐसा ही किया, और वह सड़क पर जाकर जोर-जोर से चिल्लाने लगा—'एक लम्बा रस्सा है, एक लम्बा रस्सा है,' और उसके बाद बहुत धीमे स्वर में कहता—'जिसके सिरे पर एक गाय बंधी है।' इस तरह सात बार आवाजें देने के बाद वह ईसाई गाय को अपने घर ले गया।"

कुरूप ने कहा—"प्रगतिशीलों का लम्बा रस्सा वह सांस्कृतिक-विकास है, जिस पर हम बड़ा ज़ोर देते हैं, और उसके सम्बन्ध में अपने लेखों में ज़ोर-ज़ोर से चिल्लाते रहते हैं। लेकिन जहाँ तक गाय का सम्बन्ध है, यानी क्रांति-विरोधियों के विरोध का सम्बन्ध है, और उसे जड़ से उखाड़ कर फेंकने का सम्बन्ध है, वहाँ हमारी आवाज़ बुझ जाती है।"

इसी प्रकार रूपवाद (फॉर्म) का ज़िक्र करते हुए उसने उन लोगों को आड़े-हाथों से लिया जो कहते हैं कि रूपवाद की सुन्दरता ही सब-कुछ

है, और विषय-वस्तु (कण्टेण्ट) क्या है का कोई महत्त्व नहीं है। रूप-वादियों का मज़ाक उड़ाते हुए कुरूप ने हिन्दू देवमाला के पुराने चित्रकार तीर वाजूथन का ज़िक्र किया, जिन्होंने एक बार भंग की तरंग में एक बड़ा झाड़ू अपने हाथ में लेकर, उसका एक छोर गोबर में डुबो कर, दीवार पर दे मारा। और लोगों ने जब गोबर का दीवार पर यह निशान देखा तो उन्होंने तीर वाजूथन से पूछा—"यह क्या है?"

चित्रकार ने कहा—"यह घोड़े की पूँछ है।"

लोगों ने पूछा—"और घोड़ा कहाँ है?"

तीर वाजूथन ने उत्तर दिया—"घोड़ा, घोड़ा दीवार के दूसरी ओर है।"

रूपवादियों की गद्य और पद्य की शैलियाँ भी तीर वाजूथन के इस शास्त्र की तरह हैं जो उन्होंने गोबर से सृजन किया था।

कुरूप ने इसी तरह मलयालम भाषा के प्रतिक्रियावादी लेखकों पर व्यंग्य के तेज़ प्रहार किये। इसके साथ ही उन्होंने सामयिक परिस्थितियों का विश्लेषण करते हुए नये घोषणा-पत्र का महत्त्व बताया।

साथी इन्दुचूड़न ने भी नये घोषणा-पत्र के भिन्न-भिन्न दृष्टिकोणों पर बड़ी तर्कपूर्ण बहस की। इन्दुचूड़न और कुरूप का यह विचार था कि प्रतिक्रियावादियों की ओर से नये घोषणा-पत्र का प्रबल विरोध होगा, इसीलिए उन्होंने अपने भाषणों में सारा ज़ोर दाहिने पक्ष से आनेवाली आपत्तियों का उत्तर देने में लगा दिया था। किन्तु हुआ यह कि आपत्तियाँ दाहिने पक्ष से नहीं, बाँये पक्ष से आईं। कुछ प्रतिक्रियावादियों ने तो खेल अपने हाथ से जाता देखकर अति-उग्रवादी (Ultra Left) बनकर आपत्तियाँ उठाईं। लेकिन इसमें कोई संदेह नहीं कि बाद में जो वादविवाद हुआ, उसमें किसान और मज़दूर साहित्यिकों ने और वर्ग-संघर्ष की लड़ाई लड़नेवाले बुद्धिजीवियों ने भरपूर हिस्सा लिया। यह लोग वास्तव में नये घोषणा-पत्र में क्रांतिकारी उबाल की गरमी और धमक को कम अनुभव करते थे। नये घोषणा पत्र पर जो

बहस हुई उसमें करीब पच्चीस प्रतिनिधियों ने भाग लिया। बहुधा लोगों की यह राय थी कि नये घोषणा-पत्र में केरल के शहीदों और मालाबार के साहसी लड़ाकों की आत्मा नहीं है। वह लोग उससे अधिक तेज़ और क्रांतिकारी घोषणा-पत्र चाहते थे।

साथी इन्दुचूड़न ने अपने जवाबी भाषण में नये घोषणा-पत्र का समर्थन करते हुए बड़ा ज़ोरदार भाषण दिया। उन्होंने कहा—"हमें इस नये घोषणा-पत्र को स्वीकार कर लेना चाहिए। यह घोषणा-पत्र हमारी लड़ाई का आरम्भ है, अन्त नहीं। हमें इस समय इसमें संशोधन पेश करके, अपने आपको अखिल-भारतीय जनतांत्रिक मोरचे से अलग नहीं रखना चाहिए, बल्कि भारत के दूसरे भागों का साथ देकर अपनी लड़ाई को इतना शक्तिशाली बनाना चाहिए कि हम इस नये घोषणा-पत्र से बहुत आगे जा सकें, और अपने साथियों को इसके लिए तैयार कर सकें।"

दो दिन के बराबर वादविवाद के बाद, संघ का नया घोषणा-पत्र सर्व-सम्मति से पास किया गया। दूसरे प्रतिनिधियों के भाषण से भी कॉन्फ्रेंस की क्रांतिकारी भावना का अनुमान होता था।

एक विद्यार्थी श्रीधर ने अपने भाषण में कहा—"वही क्रांतिकारी साहित्यकार अच्छा साहित्य सृजन कर सकता है, जो जन-आन्दोलनों में भाग लेकर कदम-ब-कदम वर्ग-संघर्ष में डटा रहे।"

अशोक एक खेत-मज़दूर और कवि है। वह हरिजन है और पानिया जाति का है, जो हिन्दू-समाज में निकृष्ट समझे जाते हैं। अशोक ने

अपने भाषण में साहित्य के वर्ग-संघर्ष पर अधिक ज़ोर दिया और बताया कि साहित्य 'वर्गों' से बाहर नहीं है। वह किसी-न-किसी वर्ग की हिमायत ज़रूर करता है—चाहे प्रत्यक्ष करे या चोरी-छुपे। प्रगतिशील लेखकों का कर्तव्य है कि वे साफ तौर पर ईमानदारी से मज़दूरों और किसानों के लिए लिखें, और उनके संघर्ष में भाग लें।

एक और मालाबारी मज़दूर ने उठकर पूछा—"आप लोग सर्वहारा-वर्ग के लिए लिखते तो हैं, फिर आप हमारे झंडे का उपयोग क्यों नहीं करते ?"

इसी प्रकार के० नारायणम् ने, जो उत्तरी मालाबार से आया था, एक प्रतिक्रियावादी के भाषण का उत्तर देते हुए कहा—"तुम कहते हो कि जनता को साहित्यिकों के साहित्य को परखने का अधिकार नहीं है। यह तुम किस मुंह से कहते हो ? तुम तो केवल लिखते हो, हम अपना खून भी देते हैं !"

इन्दुचूड़न ने कहा—"यह घोषणा-पत्र साहित्यकारों और बुद्धिजीवियों को कांग्रेसी शासन के विरुद्ध विरोध करने का आह्वान करता है, क्योंकि कांग्रेसी शासन अब सामाजिक उन्नति का सबसे प्रबल शत्रु बन चुका है। मद्रास प्रांत के एक मंत्री के० माधव मेनन ने कुछ समय हुआ कहा था कि साम्यवादियों को साहित्य की प्राचीन परम्पराओं से कोई

लगाव नहीं है और वह जन-साहित्य से भी कोई लगाव नहीं रखते। मैं इस झूठे अभियोग के उत्तर में केवल इतना कहना चाहता हूँ कि यह साम्यवादी शासन नहीं काँग्रेसी शासन है, जो संस्कृति और जनवाद की शत्रुता पर उतर आया है। मद्रास की पुलिस ने उत्तरी मालाबार के क्षेत्रों में कितने ही पुस्तकालयों को आग के हवाले कर दिया है। इन पुस्तकालयों में सैकड़ों ही किताबें थीं—रामायण से लेकर मौजूदा प्रगतिशील साहित्य तक। यह सब किताबें जला दी गईं, जिस तरह कभी नाज़ियों के बर्लिन में जन-तंत्र के अनुयायियों की किताबें जलाई गई थीं। आज कौन संस्कृति का दुश्मन है; हम या वह जो लायब्रेरियाँ जलाते हैं, हमारे खेलों और ड्रामों पर पाबंदियाँ लगाते हैं, जो प्रगतिशील पत्रों की जब्ती की आज्ञा देते हैं, और उन किताबों और समाचार पत्रों को भी ज़ब्त कर लेते हैं, जिन्हें कभी अँग्रेज़ी शासन ने भी ज़ब्त करने की हिम्मत नहीं की थी? आज केरल के दर्जनों प्रगतिशील लेखक जेल की काल-कोठरियों में डाल दिये गए हैं। क्या यह सब संस्कृति के प्रेम में हो रहा है? मैं कहता हूँ, जब तक भारत इस काँग्रेसी शासन की नई गुलामी से स्वतंत्र नहीं होता, तब तक हमारी संस्कृति भी स्वतंत्र नहीं हो सकती।"

घोषणा-पत्र के स्वीकार होने के बाद ही फ़ौरन एक मनोरंजक घटना घटी। मिस्टर वी० वी० के० बलाथ ने, जो मलयालम भाषा के साहित्यिक हैं, और जो इसके पहले नग्न और कुत्सित कहानियाँ लिखने का शौक करते थे, स्टेज पर आकर अपनी गलतियों को स्वीकार किया और प्रतिज्ञा की कि वह भविष्य में अपने ग़ैर-सामाजिक चलन को फ़ौरन बदल देंगे और नये घोषणा-पत्र के अनुसार उस पर चलने का प्रयत्न करेंगे।

इनके बाद, के० ए० अहमद आये। यह गेंहुआ रंग के सुन्दर नवयुवक थे। नीले रंग की बढ़िया कमीज़ पहन रखी थी, जिसमें सोने के बटन लगे हुए थे। वैसे पहनावा वही मलयाली था, यानी धोती और

कमीज़, मगर कपड़ा बढ़िया और कीमती मालूम होता था। आपने स्टेज पर आकर एक छोटा-सा भाषण दिया—मलयालम भाषा में। दो मिनट में हॉल तालियों से गूंज गया। मालूम हुआ, आपने कॉन्फ्रेंस की कार्यवाही से प्रभावित होकर प्रगतिशील लेखक संघ को एक हज़ार रुपया भेंट दिया है। इन्दुचूड़न ने बड़े हर्ष के साथ मुझसे कहा—"भई, मैं तो परेशान था, क्योंकि हम लोग घाटे में जा रहे थे। सोचता था कि इतने सारे बिल कैसे चुकाये जायंगे? मगर इस मित्र ने आकर सारी समस्या सुलझा दी।"

जिन दो दिनों में घोषणा-पत्र पर बड़ा वादविवाद हुआ, उनके बीच-वाली रात में, उसी टाउनहाल में एक सांस्कृतिक प्रोग्राम भी हुआ। यह प्रोग्राम त्रिचूर की जनता को बहुत पसन्द आया।

सबसे पहले जब पर्दा हटा तो मैंने देखा कि भारतवर्ष का नक्शा सुर्ख है, और एक लड़की हाथ में लाल झंडा लिये हुए जन-गण-मन की तर्ज़ पर एक गीत गा रही है। बाद में पता चला कि यह गीत अलप्पी के एक मजदूर कवि ने लिखा है, जो नारियल के रेशे बुनने का काम करता है।

अलप्पी के औद्योगिक शहर से मज़दूरों का एक सांस्कृतिक जत्था आया था, उनके नाच और गाने बहुत अच्छे थे। दो लड़कियों का बसंतवाला नृत्य बहुत अच्छा रहा। मलयालम भाषा के प्रसिद्ध नाट्य-कार प्रेमजी का लिखा हुआ एक ड्रामा भी दिखाया गया, जो एक अमीर किसान के जीवन से सम्बंधित था। उसमें अमीर किसान के

खेतिहर के पात्र स्वयं प्रेमजी थे। मैंने इस प्रकार के पात्रों को आज तक इस खूबी से अभिनय करते हुए कभी नहीं देखा। मैं मलयालम भाषा बिलकुल नहीं समझता था। फिर भी प्रेमजी के चेहरे के उतार-चढ़ाव, उनके हाथों के इशारे, उनके अभिनय का पूरा भाव ऐसा था कि मैं ड्रामे की बारीक-से-बारीक बात का पूरा आनन्द ले रहा था। मुस्लिम खेतिहर का पार्ट भी श्री पी० कुंजूनी ने बड़ी खूबी के साथ निभाया। इन दोनों कलाकारों ने इस ड्रामे को इस खूबी और सुन्दरता से पेश किया कि इस ड्रामे का प्रत्येक दृश्य दर्शकों के हृदय में उतर गया। ड्रामे के आरम्भ में अमीर किसानों के मुकाबले में गरीब खेतिहरों की दरिद्रता दिखाई गई—ऐसी हालत, जिसमें वह स्वयं अपनी जंजीरों से प्रेम करते हैं। अन्त में गरीब खेतिहरों के बेटे, अमीर किसानों के विरुद्ध विद्रोह का झंडा उठाते हैं, और खेतिहर मज़दूर जत्था-बंद होकर अमीर किसान से अपनी धरती छीन लेते हैं और उसमें हल चलाते हैं। मेरे विचार में यह ड्रामा मलयालम भाषा के बहुत अच्छे ड्रामों में से है, और मैं समझता हूँ कि इसका अनुवाद भारत की दूसरी भाषाओं में भी होना चाहिए। प्रत्येक प्रांत के जन-नाट्य-संघ के लिए यह बहुत उपयोगी साबित होगा। इस ड्रामे के अतिरिक्त 'आपरेशन एसाइलम' की एक उपमा भी दिखाई गई, जो सब छायाचित्र में थी। इसमें १५ अगस्त सन् १९४७ की कथित आज़ादी की अच्छी तरह असलियत दिखाई गई थी और काँग्रेस-लीग को ब्रिटिश-साम्राज्य से मिली-भगत की पोल खोली गई थी। इस छायाचित्र का अच्छी तरह से रिहर्सल नहीं हो सका था, क्योंकि समय बहुत थोड़ा था। इसलिए इसमें असम्बद्धता और अधिक स्थानों पर अप्रभावशाली होने का बोध होता था। मगर फिर भी कुल मिलाकर यह ड्रामा मज़दूर और किसान की जन-वादी लड़ाई और उसकी शक्ति का अच्छी तरह से प्रदर्शन करता था।

लेकिन जिस चीज़ ने सारे टाउनहॉल में बिजली-जैसी लहर दौड़ा दी, वह एक छोटा-सा दो मिनट का दृश्य था जिसमें 'वायलार' के

शहीद फिर जागते हैं—वे चार सौ शहीद मज़दूर, जिन्होंने केरल की स्वतंत्रता के लिए सर सी० पी० से टक्कर ली थी ; जिन्हें आज के इस दौर से पहले केरल के काँग्रेसी बड़े गर्व से अपना शहीद कहते थे। जब ये शहीद हड्डियों के ढाँचे रात के सन्नाटे में अपनी कब्रों से उठकर लड़खड़ाते हुए स्टेज के एक कोने से दूसरे कोने की ओर जाते हैं, और फिर दुश्मन की गोली खाकर अपनी कब्रों में गिर जाते हैं, तो मैं आपको बता नहीं सकता कि दर्शकों के जोश की क्या हालत हो जाती है। कुछ मिनट तक प्रत्येक व्यक्ति हॉल में मुट्ठियाँ मींचे खड़ा होकर वायलार के शहीदों के नारे लगा रहा था। क्रोध का उफान और घन-गरज का यह हाल था कि मालूम होता था कि टाउनहॉल की छत भक से उड़ जायगी, और इन गगनचुम्बी नारों की गूंज सारे भारतवर्ष में फैल जायगी।

वायलार के जिन लड़ाके, साहसी और बहादुर मज़दूरों और किसानों के बलिदान के बलबूते पर काँग्रेस ने ट्रावंकोर और कोचीन में शासन प्राप्त किया, आज उन्हीं वायलार के शहीदों को केरल के काँग्रेसी बिलकुल भूल चुके हैं। उनमें कुछ लोग ऐसे भी हैं, जो अपने अख़बारों और लेखों में खुलेआम इन शहीदों का अपमान करते हैं। और कई लोग कहते हैं कि इन शहीदों का खून योंही ग़लती से बहाया गया, वरना इसकी आवश्यकता नहीं थी। आज काँग्रेसी नेता शक्ति और शासन के मद में यह भी भूल चुके हैं कि उन्हें सफलता की सीढ़ी तक ले जाने में वायलार के शहीदों का कितना बड़ा हिस्सा है। कई काँग्रेसी मंत्री और नेता अब भी ऊपरी दिल से वायलार के शहीदों की तारीफ़ करते हैं, मगर उन नज़रबन्दों को रिहा नहीं करते, जो वायलार की लड़ाई के दौरान में सर सी० पी० के समय गिरफ्तार हुए थे। वही सर सी० पी० जो कभी काँग्रेस का जानी दुश्मन था, आज दिल्ली में राष्ट्रीय मंत्रियों की दावत में बुलाया जाता है, भारत-अमरीका कान्फ्रेंस में सरकारी प्रतिनिधि की हैसियत से शरीक हो जाता है, और मद्रास

रेडियो पर संस्कृति के सम्बन्ध में भाषण ब्राडकास्ट करता है। इस संस्कृति से अभी तक शहीदों के खून की बू आती है। अभी तक वह हड्डियाँ वायलार की उस पवित्र धरती पर बिखरी पड़ी हैं, जहाँ सर सी० पी० के सिपाहियों ने वायलार के बहादुर मज़दूरों और किसानों पर गोलियाँ चलाई थीं; अभी तक नारियल के पेड़ों के सीनों पर 'डमडम' कारतूसों के वह निशान मौजूद हैं, जिन्होंने पेड़ों के तनों में दस इंच चौड़े और गहरे घाव बना दिए हैं। मनुष्य के सीनों का क्या हाल हुआ होगा? इसकी कहानी 'शहीद जागते हैं' का दृश्यान्त देखकर ही समझ में आ सकती है।

इस प्रोग्राम के दूसरे दिन शहर में यह ख़बर फैली कि पुलिस हमारी आम सभा पर पाबन्दी लगा देगी, और अगर फिर भी हमने सभा की तो गोलियाँ चलायगी। लेकिन प्रगतिशील लेखक संघ के काम करनेवाले साथियों ने इस अफवाह पर कोई ध्यान नहीं दिया; और नियमित रूप से आम सभा के सम्बन्ध में अपने-अपने कामों में लगे रहे।

आम सभा शाम को थी, जहाँ मुझे बोलना था। लेकिन दिन को घोषणा-पत्र के स्वीकार हो जाने के बाद भी बहुत से प्रस्ताव बाकी थे, जिन पर प्रतिनिधियों की राय की ज़रूरत थी।

सबसे पहले सभापति पद से तीन प्रस्ताव पेश किये गए, जो सर्व सम्मति से पास हुए—

१—कॉमरेड स्टालिन की सत्तरवीं वर्ष-गाँठ पर बधाई का संदेश।

२—केरल के शहीदों को श्रद्धांजलि।

३—नये जनवादी चीन को बधाई।

जी० फिलिप्स ने जनवादी शान्ति के सम्बन्ध में प्रस्ताव पेश किया।

मज़दूरों की माँगों के सम्बन्ध में जो प्रस्ताव पास हुआ, उसके पेश करनेवाले श्री गोपाल थे, जो स्वयं एक मज़दूर हैं।

नागरिक स्वतंत्रता के सम्बन्ध में जो प्रस्ताव पास हुआ उसे के० जी० पद्मनभान ने रखा था। उनका किस्सा भी बड़ा अजीब है। वह एक दिन 'पिल्लूर' के मुकाम पर एक सांस्कृतिक प्रोग्राम में भाग ले रहे थे कि पुलिस ने उन्हें गिरफ्तार कर लिया, और थाने ले जाकर कहा—"अच्छा बच्चाजी, अब गाओ ज़रा वायलार के शहीदों का गीत।"

पद्मनभान पहले तो रुके रहे, फिर जब पुलिस ने और ज़िद की तो आप शहीदों की शान में एक अच्छा क्रांतिकारी गीत गाने लगे।

अभी उन्होंने पहला बंद गाया ही था कि पुलिसवालों ने उन्हें रोककर खूब पीटा, और कहा—"अब गाओ आगे।"

फिर पद्मनभान ने दूसरा बंद गाया; तीसरा बंद गाया; चौथा बंद गाया; और वह गाते ही चले गए। और हर बन्द के बाद पुलिस-वाले रोककर उन्हें ज़ोर से पीटते। गीत बहुत लम्बा था। लेकिन पद्मनभान ने निश्चय कर लिया था कि वह उसे समाप्त करके ही दम लेंगे। फलस्वरूप वह जब आखिरी कड़ी पर पहुँचे तो पुलिसवाले उन्हें इतना पीट चुके थे कि पद्मनभान लहू-लुहान होकर बेहोश हो गए।

वही व्यक्ति इस समय त्रिचूर के टाउनहॉल में केरल की नागरिक-स्वतंत्रता के सम्बन्ध में बोल रहा था। इस विषय पर बोलने का अधिकार उसने अपना खून देकर प्राप्त किया था। मेरे हृदय में श्रीधर का वह वाक्य गूंजने लगा—"तुम तो केवल लिखते हो; हम तो अपना खून भी देते हैं; हम अपना खून भी देते हैं........"

संयुक्त केरल का प्रस्ताव पी० रामनम् ने पेश किया।

केरल के जिन बहादुर किसानों को फांसी की सजा हो चुकी है, उसके बारे में विरोध प्रकट करते हुए एक मज़दूर ने अपना प्रस्ताव पेश किया। यह मजदूर लेखक उत्तरी मालाबार से आया था। मैं उसका नाम नहीं जानता, क्योंकि वह ताज़ा-ताज़ा लड़ाई के मोरचे से आया था। उसके शरीर पर अभी तक पुलिस द्वारा किये गए घावों के निशान मौजूद थे, और वह अभी तक खून थूकता था। देखनेवालों का खयाल था और स्वयं उसका भी यही अनुभव था कि एक महीने के अन्दर-अन्दर वह स्वयं शहीद हो जायगा। लेकिन न जाने इस समय इस हड्डियों के पिंजर में यह बिजली-जैसी कड़क कहाँ से आ गई थी! वह गरजते शब्दों में अपने जीवन की अंतिम स्वांस घोलकर तैलंगाना के बहादुरों को कॉन्फ्रेंस का सलाम भेज रहा था। वह जानता था, उसे बीस-पच्चीस दिन में मर जाना है; उसे आराम की ज़रूरत है, कोमल उँगलियों और ममता-भरी निगाहों की प्यास है। मगर वह तो वतन का सिपाही था जो नये समाज की बुनियाद के लिए अपने जीवन की अंतिम बूँद भी निचोड़ देता है, और उसे इन्कलाब की भेंट चढ़ा देता है। तैलंगाना के लिए इससे अच्छा सलाम भेजने वाला नहीं मिल सकता था, वह संदेश देने वाला जो स्वयं लिखता भी है और खून भी देता है।

एक-एक करके सारे प्रस्ताव समाप्त हो गए, केरल के राष्ट्रीय साहित्यिकों की यह कान्फ्रेंस बिना किसी बाधा के समाप्त हो गई। कल प्रतिनिधिगण अपने-अपने घरों को चले जायंगे, और केरल के गाँव व शहरों में नये साहित्य की चर्चा करेंगे। मैं यही सोच रहा था कि इतने में इन्दुचूड़न की आवाज़ आई—"साथियो, अभी-अभी खबर मिली है कि

हथियारों से सुसज्जित पुलिस ने उस जगह पर घेरा डाल लिया है, जहाँ हमारी आम-सभा होने वाली है।"

एक क्षण के लिए सारे हॉल में सन्नाटा छा गया।

गोरे रंग के बाँके तिरछे इन्दुचूड़न के बुद्धिमत्तापूर्ण किताबी चेहरे पर लड़ाई की चमक दौड़ गई। उसने हँसकर प्रतिनिधियों से पूछा—"अब क्या इरादा है?"

हॉल में से एक हज़ार आवाज़ें उठीं—"सभा होगी।"

इन्दुचूड़न ने गरजकर कहा—"हाँ, हाँ, सभा होगी, और ज़रूर होगी। परन्तु कैसे होगी? जल्दी में नहीं, परेशानी और घबराहट में भी नहीं। यह सभा बड़ी सरलता से, बड़े आराम से उसी दबदबे और शान के साथ होगी, जिस तरह हमारी यह दो दिन की कान्फ्रेंस हुई है। परन्तु इसके साथ यह भी याद रहे कि हमें अपने साथी मेहमान की भी रक्षा करनी है।"

लोग मेरी ओर देख रहे थे।

इन्दुचूड़न ने कहा—"आप इसका अर्थ अच्छी तरह समझते हैं। मुझे वालंटियर चाहिएं, जो अपने सीने पर गोलियाँ खा सकें, स्वयं गोली खाकर मर जायं लेकिन कृष्णचन्द्र को सुरक्षित रखें।"

हॉल में एक हज़ार आवाज़ें गूंजने लगीं—"पहले हम मरेंगे, फिर कोई कृष्णचन्द्र को हाथ लगायगा!"

हॉल में एक हज़ार आदमी खड़े थे—एक हज़ार वॉलंटियर, जो एक मनुष्य की जान बचाने के लिए, एक हज़ार जान गंवाने के लिए तैयार थे। उस हॉल में से एक हज़ार आदमियों में से, किसी के पेट में दर्द नहीं उठा, किसीको ज़रूरी काम याद नहीं आया, किसी ने चुपके से निकलकर भाग जाने का विचार भी नहीं किया। सब अपनी सीटों पर खड़े नारे लगा रहे थे।

इन्दुचूड़न के मुस्कराते हुए होंठ हँसी से खिल गए। आनेवाली लड़ाई ने उसे कितना सतेज और चमकीला बना दिया था! वह

आस्तीन चढ़ाकर कहने लगा—"ऐसे नहीं, सब लोग बैठ जाओ, मैं बताता हूँ।"

सब लोग अपनी सीटों पर बैठ गए।

इन्दुचूड़न ने कहा—"मैं चाहता हूँ कि जब आप हॉल से बाहर निकलें तो शोर मचाते हुए, अनुशासनहीन जलूस की तरह पब्लिक-पार्क की ओर न जायं, बल्कि दस-दस पन्द्रह-पन्द्रह आदमियों की टोलियों में एक-दूसरे से अलग रहकर आम-सभा में पहुँचें; और वहाँ जाकर स्टेज के आस-पास अपने दस्ते जमाकर बैठ जायं। समझ गए?"

लोगों ने 'हाँ' में सिर हिलाया। इसके बाद इन्दुचूड़न अलग-अलग टोलियों को समझाने लगा, कौन कहाँ बैठेगा, कौन क्या करेगा, पूरा संगठन कैसे होगा, सभा को कन्ट्रोल में कैसे रखा जायगा। यह सब बातें समझाने के बाद उसने टोलियों को हॉल से निकलने की आज्ञा दी।

सबसे पहले औरतों की टोली बाहर निकली।

पूरा हॉल तालियों से गूंज उठा, मेरी आँखों में आँसू छलछला आए। मैं हरगिज़ इतने प्यार के योग्य नहीं था। कोई भी एक व्यक्ति इतने विशाल प्रेम और आदर का कैसे अधिकारी हो सकता है?

दूसरी टोली त्रिचूर के साथियों की थी।

तीसरी टोली में उत्तरी मालाबार के मज़दूर और किसान लेखक थे।

यह त्रिवेन्द्रम के बहादुर विद्यार्थियों की टोली मार्च कर रही थी।

यह 'कोयलून' के साथी थे, इनमें जी० फिलिप्स भी था, जिसके ब्याह को अभी तीन महीने भी नहीं बीते थे। वह मुस्कराकर मेरे पास से जाने लगा। मैंने उसका हाथ पकड़कर कहा—"यह सब मुझे बहुत अजीब-सा मालूम होता है। यद्यपि मैं जानता हूँ कि इस समय तुम्हारे सामने मैं नहीं हूँ हमारा पूरा प्रगतिशील साहित्य और उसकी मर्यादा है, मगर क्योंकि इसमें मेरा व्यक्तित्व उलझा है......."

जी० फिलिप्स मुस्कराता हुआ मेरे सामने से निकल गया।

यह अलप्पी के प्रतिनिधि जा रहे हैं।

इस तरह आठ, दस, बारह, पन्द्रह, बीस आदमियों की टोलियों में प्रतिनिधि हॉल से बाहर निकलते गए, और पब्लिक-पार्क को जाने वाली सड़क पर चलते गए। उन्होंने अपनी धोतियाँ, जिसे वे पंजाबी तहमद की तरह बांधते हैं, घुटनों तक ऊपर उठाकर बाँध ली थीं, और बड़े मज़े से सड़क पर चल रहे थे।........मैं सबसे अंतिम टोली में था।

हम लोग जब पब्लिक-पार्क में पहुँचे तो वहाँ बीस हज़ार आदमियों की भीड़ थी और पुलिस का कहीं पता नहीं था। बाद में पता चला कि सोचकर, कुछ समझकर, उन्होंने अपना इरादा बदल दिया था।

मेरे सामने बीस हज़ार मनुष्य थे, पीछे शिवजी का मंदिर था। पीछे भूतकाल था, आगे भविष्य था, और मैं इन दोनों के बीच में खड़ा सोच रहा था कि वह कौनसी शक्ति है जो इतने मनुष्यों को यहाँ खींच लाई है? वह कौन लोग हैं, जो यह कहते हैं कि जनता अपने साहित्य से प्रेम नहीं करती? यह बीस हज़ार आदमी यहाँ किसलिए जमा हुए हैं? यह मेरी ओर उठे हुए बीस हज़ार आशायुक्त चेहरे मुझ में क्या खोज रहे हैं? यकायक मैंने अनुभव किया कि इनमें प्रत्येक व्यक्ति साहित्यकार था, प्रत्येक व्यक्ति अपने चेहरे पर एक कहानी लिखकर लाया था—वह कहानी जो एक-दूसरे से भिन्न होते हुए भी एक ही जैसी थी; निराश इच्छाओं और उजड़ी उमंगों की कहानी; तरसी हुई आँखों और झुलसे हुए होंठों की कहानी; शताब्दियों के अकाल की भूखी, नंगी, प्यासी कहानी; कहानी जिसमें प्रेम मर गया था, मर्यादा लुट गई थी, और भोलापन भिखारी बन गया था। इस कहानी को मैंने सबसे पहले काश्मीर में देखा था, फिर पंजाब में देखा, फिर देहली में देखा, फिर बम्बई में देखा, फिर बंगाल में देखा, और

त्रिचूर में देख रहा हूं। यह तो वही पुरानी कहानी है, भारत के ग़रीब मज़लूम मनुष्यों की कहानी........

यकायक किसीने कहा—"इन्कलाब-जिन्दाबाद !"

और यकायक ही वह सारे चेहरे बदल गए—जैसे बीस हजार चेहरों से भूतकाल की मिट्टी धुल गई और संध्या की लाली में वह बीस हजार चेहरे ऐसे चमकने लगे जैसे आकाश में उड़ते हुए सफेद बादल सूर्य की किरणों से टकराकर यकायक रंगीन हो जायं। अब प्रत्येक चेहरा हर्ष से सुनहरा और गुलाबी था। यह हरे-भरे हर्षित चेहरे, सर्वहारा लड़ाकों और बहादुरों के चेहरे, मजदूरों, किसानों, विद्यार्थियों और साहित्यिकों के निडर चेहरे ! तुम मेरे लिए अपरिचित नहीं हो, तुम तो भारत के भविष्य हो। उत्तर से दक्षिण तक और पूर्व से पश्चिम तक आज भारतवर्ष का सौभाग्य सुर्ख होता चला जा रहा है।

जैसे मेरे दिल की धड़कनें उन बीस हजार दिल की धड़कनों में खो गईं। मैंने धीरे-धीरे कहना आरम्भ किया—"साथियो ! दोस्तो !!...."

★★★

'वेली पट्टम्' के उस पार 'चरकुल' नाम का ताल्लुका है, जो मद्रास प्रांत में शामिल है। इस ताल्लुके से चार प्रतिनिधि हमारी कान्फ्रेंस में शामिल हुए थे। इनमें से तीन उत्तरी मालाबार के किसान-कवि थे। चौथा मजदूर था, जो साहित्यिक और राजनीतिक लेख लिखता था। इसका नाम वी० कृष्णा था। बाकी तीनों के नाम थे पी० राघवन, पी० नारायण और के० नारायण। जब हम लोग आम-सभा से निश्चिंत होकर अपने होटल में पहुँचे तो यह लोग हमारी प्रतीक्षा कर रहे थे।

पी० रमन मैनन, जिन्होंने कान्फ्रेंस में संयुक्त केरल का प्रस्ताव पेश किया था और जो बहुधा हमारे साथ रहते थे, मुझसे कहने लगे—"आपको उत्तरी मालाबार के लड़ाकू साथियों से मिलने की बड़ी इच्छा थी। आइए, आपको इन लोगों से मिला दें।"

वी० कृष्णा मझोले कद के गठे हुए शरीर का मजदूर था। उसने एक नीली कमीज़ और एक नीली निकर पहन रखी थी। जब वह मुस्कराता नहीं था, तो संदेह से घूरता हुआ जान पड़ता था। राघवन का चेहरा स्याह था और पी० नारायण का रंग गेहुँआ था। के० नारायण का कद छः फुट से ऊँचा निकलता हुआ था। इसके जबड़े बाहर और कपोल अन्दर घुसे हुए मालूम होते थे। चेहरे भिन्न थे, लेकिन मज़बूती की छाप सब पर थी—मज़बूती और गहराई, आँखों में खोज की चमक। इन्हें देखकर प्रतीत होता था कि यह सारे चेहरे जैसे स्याह चट्टानों को छीलकर गढ़े गए हैं, यानी जैसी केरल की चट्टानें हैं, वैसे ही केरल के मनुष्य हैं; जैसे केरल के वृक्ष हैं, वैसे ही केरल के निवासी हैं—

'अर्कनाट' के सीधे मस्त तने, जो बड़े-से-बड़े समुद्री तूफान में भी जमे रहते हैं और अपनी जगह से उखड़ने का नाम नहीं लेते।

वी० कृष्णा हिन्दी भी अच्छी-खासी जानता था। वह बम्बई, कानपुर और मद्रास की मिलों में काम भी कर चुका है। इस अवसर पर उसने दुभाषिये का काम किया। सबसे पहले मैंने वी० कृष्णा से पूछा—"तुम तो मजदूर हो, दिन में दस-बारह घंटे परिश्रम करने के बाद क्या तुममें इतनी शक्ति रहती है कि तुम साहित्य में दिलचस्पी ले सको?"

वी० कृष्णा ने उत्तर दिया—"पहले मैं भी साहित्य को योंही समझता था, यानी समय नष्ट करना। फिर ज्यों-ज्यों हमारा संघर्ष तेज होता गया, त्यों-त्यों साहित्य के सम्बन्ध में बहुत-सी बातें मेरी समझ में आती गईं और मुझे विश्वास हो गया कि साहित्य भी हमारी लड़ाई को आगे बढ़ाने का एक बहुत अच्छा साधन हो सकता है। लेकिन मेरी आँखें तो उस समय खुलीं, जब पुलिस ने मेरे घर पर छापा मारा और मेरी लायब्रेरी उठाकर ले गई।"

"तुम्हारी लायब्रेरी?" मैंने चकित होकर पूछा।

कृष्णा ने मेरी ओर मुस्कराकर देखा—"मेरे पास पौने चार सौ किताबें थीं। इन पर मैंने आठ सौ रुपया खर्च किया था। यह लायब्रेरी मेरी पन्द्रह-साला मजदूरी का गहना थी। पन्द्रह साल तक मैंने सिनेमा नहीं देखा, अच्छे कपड़े नहीं सिलवाये, कभी सिगरेट-बीड़ी नहीं पी। इससे जो रकम बचती रही उसे जोड़-जोड़कर किताबें खरीदता रहा। फिर एक दिन पुलिस ने मेरे घर पर छापा मारा और सारी किताबें उठाकर ले गई। इसमें नेहरू की किताब 'हिन्दुस्तान की खोज' भी थी, और पामदत्त का 'आज का हिन्दुस्तान' भी। पुलिस झाड़ू फेरकर सब ले गई। एक पृष्ठ भी मेरे लिए नहीं छोड़ा। उस दिन मुझे मालूम हुआ कि हमारा साहित्य कितना मूल्यवान है और कितना खतरनाक भी है। बादशाह सलामत की स्पेशल मालाबार-पुलिस भी इससे भय खाती थी।"

मैंने पूछा—"क्या मालाबार में अभी तक स्पेशल पुलिस नियुक्त है ?"

राघवन ने कहा—"वह हटी ही कब थी ? जब कांग्रेसी शासन नहीं था, तब भी यह स्पेशल पुलिस हमारे सिरों पर मौजूद थी और अब जब कांग्रेस का शासन हो गया, तब भी यह पुलिस हमारे सिरों पर चढ़ दौड़ने के लिए मौजूद है।"

पी० नारायण ने मुस्कराते हुए कहा—"और क्या, हमारा क्षेत्र भी तो स्पेशल है। फिर हमारे यहाँ स्पेशल पुलिस क्यों नहीं हो ? हमारे 'चरकुल' ताल्लुके का राजा अपने सोने के कमरे में आस-पास बिजली के तार लगाकर सोता है। इतना पापुलर (लोकप्रिय) है वह जनता में ! और जब मालाबार के किसानों ने 'धान नहीं देंगे' का आन्दोलन प्रारम्भ किया था, तो सबसे पहले गोली हमारे ही सीनों पर चली थी। लेकिन यह गोली चलने का किस्सा भी बड़ा अजीब है।"

"क्या बात हुई थी ?" मैंने पूछा।

लम्बा-तड़ङ्गा के० नारायण, जो अब तक चुप था, धीरे से बोला—"मैं उस आन्दोलन में शरीक था। बात केवल इतनी थी कि उस साल धान की खेती बहुत कम हुई थी; दिसम्बर में भी पनीरी कम हुई और सितम्बर में भी पनीरी बहुत कम थी।"

"तुम्हारे यहां क्या धान की दो फसलें होती हैं ?"

"हाँ," के० नारायण ने मुझे बालकों की तरह समझाते हुए कहा—"हमारे यहां मानसून की दो ऋतुएं होती हैं। एक ऋतु में मानसून को पूर्व से बंगाल की खाड़ी से भीगी हुई हवाएं उड़ाकर लाती हैं, दूसरी ऋतु में मानसून अरब सागर से आती है। पहली पनीरी अगस्त-सितम्बर में काटी जाती है, दूसरी पनीरी नवम्बर-दिसम्बर में। लेकिन उस वर्ष तो ऐसा हुआ कि दोनों फसलें बहुत कम हुईं, और किसानों को उपवास करने पड़ रहे थे।"

"अच्छा, तो तुमने धान जमींदारों को देने से इन्कार कर दिया ?"

"जी नहीं, हमने जमींदार को तो उसका भाग दे दिया, किन्तु लड़ाई इस बात पर हुई कि वह अपने भाग के अलावा मन्दिर के लिए भी धान माँगता था।"

"मन्दिर के लिए?"

"हाँ, राजाजी के दो बड़े-बड़े मन्दिर हैं जिनमें उन्होंने कई एक पुजारी और देव-दासियाँ पाल रखी हैं। इसके अलावा वहाँ यात्रियों, साधुओं और भिखमंगों के लिए दो लंगर भी खुले हुए हैं। उसके लिए भी धान किसानों की फसल से लिया जाता था। मगर जब हमारे अपने घरवाले हो भूखे मर रहे हों, तो हम लोग मन्दिर के देवता और उसके कर्मचारियों के लिए धान कहाँ से देते? धान मनुष्यों के लिए तो काफी था नहीं, पत्थरों के पेट कहाँ से भरते?"

इसलिए हमने कहा—"अगर भगवान को धान की जरूरत होती तो वे किसानों की फसल इस तरह बरबाद न करते।"

"लेकिन राजा ने हमारी एक नहीं सुनी। लाचार तंग आकर किसानों ने 'धान नहीं देंगे' का आन्दोलन आरम्भ कर दिया; और स्पेशल पुलिस ने हम पर गोली चलाई ताकि धान मन्दिर में पहुँच सके— किसान के बेटे भूखों मरें, लेकिन पत्थर के देवता चढ़ावा लेते रहें; हमारी माँओं के मुँह में उड़कर एक खील भी नहीं जाय, लेकिन निर्दयी देवताओं के सामने नाचनेवाली देव-दासियों के पाँव नियमानुसार थिरकते रहें; मेहनत करनेवाले मनुष्य मर जायें, परन्तु दूसरों की मेहनत पर ऐश

करने वाले देवता नियमानुसार अपने मन्दिरों और महलों में रंगरेलियां रचाएं।"

"फिर क्या हुआ?"

"फिर क्या होता! हमने गोली चलने के बाद भी धान नहीं दिया और हमारा आन्दोलन शक्तिशाली होता गया। अब तो सुना है कि राजाजी के मन्दिर के भीतर भी, जहां देवता की मूर्ति रखी है, वहां पर भी बिजली के तार लग गए हैं।"

इस पर चारों किसान जोर-जोर से हँसने लगे।

फिर वह एकदम चुप हो गए, और एक-दूसरे की ओर चुपचाप ताकने लगे। मैंने उनकी आँखों में दुःख, क्रोध और घृणा का उबलता हुआ लावा देखा।

राघवन ने धीरे से कहा—"स्पेशल पुलिस ने हमारे आन्दोलन को कुचलने के लिए प्रत्येक संभव हथियार का प्रयोग किया। मन्दिर के मेले में यात्रियों में झगड़ा करवाकर गोली चलाई। 'कोटयाट' में हमारी स्त्रियों की बेइज्जती की। हमारे पास इन स्त्रियों के हलफी बयान मौजूद हैं। वे दुनिया-भर के किसी बड़े-से-बड़े हाकिम के आगे अपना बयान दे सकती हैं। हमारे एक कार्यकर्ता ने कांग्रेस के सभापति पट्टाभि सीतारमय्या के सामने सारी घटना रखी थी, और कांग्रेस के सभापति ने पुलिस की इस बर्बरता के विरुद्ध बयान दिया, जो अखबारों में भी छपा था।"

के० नारायण बोला, जैसे वह किसीसे नहीं अपने आपसे बात कर रहा हो—"चन्द्रकोट के गांव में हमारे एक क्रान्तिकारी कार्यकर्ता रिटेक को पुलिस ने पकड़ लिया, और मार-मारकर जगह-जगह से हड्डियाँ तोड़ डालीं—बाहों की और पांवों की हड्डियाँ। उसके घर में आग लगा दी। जब उसका हरा-भरा घर जलकर राख हो गया तब उस पर हल चला दिया। वह स्थान आज भी उसी तरह मौजूद है........।"

"लेकिन रिटेक अभी जीवित है और हमारे साथ काम कर रहा है," वी० कृष्णा ने मुस्कराकर कहा।

"कॉमरेड आनन्दन् की कहानी कितनी अजीब है!" पी० नारायण ने कहा।

"हाँ, हाँ," वी० कृष्णा ने जल्दी से कहा—"हां, भई वह कहानी इन्हें जरूर सुनाओ।"

राघवन ने कहा—"हुआ यह कि कॉमरेड आनन्दन् को राजा के गुण्डे ने मार डाला।"

"मार डाला? क्यों?" मैंने पूछा।

"बस, मार डाला।" उसने उत्तर दिया—"किसानों का काम जो करता था। यह कसूर क्या कम है? और दोस्त, मार डालने की खबर पर इस तरह चौंका न करो। हमारे यहां मार डालना, और मर जाना साधारण बात है। रोज ऐसा होता रहता है। मगर इससे हमारा आन्दोलन नहीं मिटता। कुछ आगे ही बढ़ता है।"

"तुम असली बात सुनाओ जी।" वी० कृष्णा बेचैन होकर बोला।

राघवन ने कहा—"जब उस गुण्डे ने राजा के कहने पर कॉमरेड आनन्दन् को मार डाला........"

"ठहरो," मैंने कहा—"पहले यह बताओ कि उस गुण्डे का नाम क्या था?"

राघवन बोला—"मैं नहीं जानता उस गुण्डे का क्या नाम था? मैं जानता हूँ, पर नहीं बताऊँगा। क्योंकि गुण्डे का कोई नाम नहीं होता। गुण्डा, गुण्डा होता है। उसका नाम बताना नाम की बेइज्जती करना है। और सच, बात तो यह है कि जो नाम उस गुण्डे का है, वही

नाम हमारे एक बहुत अच्छे साथी का है, इसलिए मैं तुम्हें उस गुण्डे का नाम नहीं बताऊँगा। बस यही समझो कि कॉमरेड आनन्दन् को उस गुण्डे ने मार डाला, और राजा से अपना इनाम ले लिया। इसके बाद वह अपनी पत्नी को लेकर कॉमरेड आनन्दन् के गांव से किसी दूसरे गांव में चला गया। कुछ दिनों बाद वहां से भी निकाल दिया गया। इस भांति वह राजा के एक गाँव से दूसरे गांव जाता, लेकिन कहीं उसके पांव नहीं टिकते।"

"क्यों?"

राघवन ने एक क्षण रुककर मेरी ओर बड़ी अजीब नजरों से देख कर कहा—"उसकी पत्नी को अब प्रतिदिन 'दौरा' पड़ता, 'हाल' आता। हाल समझते हो? हाल में आदमी सिर हिलाता है और मुँह से झाग गिराता है और अनाप-शनाप बकने लगता है। लोग समझते हैं कि इस पर किसी प्रेत की छाया है।"

मैंने 'हां' में सिर हिलाया।

"बस यही हाल उस गुण्डे की पत्नी का भी होता था, और वह इस हाल के समय लोगों से चीख-चीखकर कहती—"मैं आनन्दन् हूँ, मैं आनन्दन् हूं, मैं आनन्दन् हूँ।"

"और वह जब जोर-जोर से चीखती तो गुण्डा परेशान होकर अपने कानों पर हाथ रख लेता, या अपनी पत्नी के मुँह पर हाथ रख देता, या उसे धड़ाधड़ पीटने लग जाता।"

"फिर, फिर क्या हुआ?"

"फिर एक दिन परेशान होकर उस गुण्डे ने अपनी पत्नी का गला घोंट दिया। सुना है अपनी पत्नी उसे सचमुच बहुत प्यारी थी।"

कमरे में बहुत देर तक खामोशी रही। फिर के० नारायण ने रात के सन्नाटे को तोड़ते हुए शहद की मक्खियों की-सी गूंजदार आवाज में कहा—"यह मत समझना कि चारों ओर अत्याचार-ही-अत्याचार है, और हम अत्याचार सहते हुए इस चक्की में पिसे जा रहे हैं। चरकुल ताल्लुके का किसान इतना कायर नहीं है। वह अभी तक उसी प्रबल साहस से लड़ रहा है।"

"और मजदूर को तुम क्या समझते हो?" वी० कृष्णा ने बढ़कर कहा—"याद है, ए० के० सेग्युल आरान के सूती कारखाने में हम लोगों ने जहाजियों की हड़ताल के समय सहानुभूति के तौर पर एक सौ पांच दिन की हड़ताल की थी?"

"एक सौ पांच दिन!" मैं चकित होकर बोला।

वी० कृष्णा मेरे आश्चर्य से इतना प्रभावित हुआ कि अब बिलकुल चुप हो गया, और अपने साथी किसानों की ओर रहस्यपूर्ण दृष्टि से देखकर मुस्कराने लगा, जैसे वह कह रहा हो—"अब कहते जाओ तुम अपनी कहानी, लेकिन क्या तुम कभी इसका मुकाबला कर सकते हो?"

के० नारायण ने कहा—"हमने भी एक छोटा-सा स्वतन्त्र किला बनाया था, 'केरी विल्लूर' के मुकाम पर। जब हमारा आन्दोलन तेजी पर था, वहां एक महीने तक स्पेशल पुलिस का आदमी हमारे क्षेत्र में अन्दर घुसने की हिम्मत नहीं कर सका। पूरे तीस दिन। यद्यपि अब हालत दूसरी है, लेकिन दिन को अब भी वह लोग वहां नहीं जा सकते। रात को छापा मारते हैं। वह भी सैकड़ों की संख्या में आकर। दिन में आकर अब भी मुकाबला करने की हिम्मत नहीं है उनमें।

पी० नारायण ने मुस्कराते हुए कहा—"हमारी स्त्रियों ने भी हमारी लड़ाई में बराबर का हिस्सा लिया है। 'चिम्मी' के जागीरदार ने जब

गांववालों को जंगल से लकड़ियां काटने के लिए मना कर दिया तो स्त्रियों ने उसके विरुद्ध विरोध प्रदर्शित किया। जब चिम्मी के जागीरदार ने पुलिस बुलाई और जंगल से लकड़ियां काटकर आती हुई स्त्रियों पर हमला किया तो स्त्रियों ने भी बड़े साहस से उनका मुकाबला किया, और थोड़ी देर बाद पुलिसवालों को अपने घेरे में लेकर, उन्हें अपनी कुल्हाड़ियों के चोबी दस्तों से वह पीटा, वह पीटा कि बेचारों को जान बचाकर भागना मुश्किल हो गया। कई पुलिसवाले तो अपना डंडा-टोपी भी वहीं भूल गए। बाद में गांववालों ने वह चीजें थाने में पहुँचा दीं।"

वी० कृष्णा बोला—"अरे, बड़ा मजा रहा, सचमुच!"

वे तीनों किसान भी हँसने लगे। हम लोग भी उनकी हँसी में शरीक हो गए। रात के घने अँधियारे में युगों के चोट खाये हुए चेहरों पर प्रकाश की मशालें जगमगाने लगीं।

मैंने वी० कृष्णा से पूछा—"कॉन्फ्रेंस के सम्बन्ध में तुम्हारी क्या राय है?"

उसने सोच-समझकर उत्तर दिया—"कॉन्फ्रेंस में अपनापन था।"

फिर मैंने सोच-साचकर बाकी के तीनों किसानों को देखकर कहा—"मैं बम्बई लौटने पर उत्तरी-मालाबार के किसानों का कुछ सन्देश अपने साथ ले जाना चाहता हूँ।"

उन तीनों किसानों ने मेरी ओर देखा। फिर उन्होंने एक-दूसरे की ओर भेद-भरी दृष्टि से देखा, और वह आपस में धीरे-धीरे बातें करने लगे, जैसे कोई हां में सिर हिला रहा हो, और कोई इन्कार कर रहा हो, और कोई और ही बात बता रहा हो। फिर उन तीनों के सिर एक साथ हिले, और उन्होंने वी० कृष्णा को ओर देखकर उससे कुछ कहा।

वी० कृष्णा ने मुझसे कहा—"बम्बईवालों से कह देना कि चरकुल तालुके का किसान आज भी सिर उठाकर चलता है।"

★★★

रात बहुत गहरी हो चुकी थी। होटल के उस बड़े कमरे में जहां मैं ठहरा हुआ था, वे चारों मित्र धरती पर पड़कर सो गए। मैं करवट बदल-बदल कर जागता रहा, क्योंकि मेरी आंखों में नींद नहीं थी। कभी मैं जलते हुए घर देखता, कभी चटखती हुई हड्डियां, कभी मन्दिर की सीढ़ियों पर चलती हुई गोलियां, फिर कभी मेरे कानों में आवाज आती 'मैं आनन्दन् हूँ, मैं आनन्दन् हूँ,' और कोई गुण्डा जोर-जोर से खिलखिलाने लगता। फिर मैं उठकर अपने साथियों के चेहरे देखने लगा, जिन्होंने सच्ची आजादी की लड़ाई के मोरचे पर अपने प्राणों की बाजी लगा रखी थी। दिन में शायद आदमी एक नकाब पहने रहता है और उसके चेहरे पर बहुत-सी बातें नजर नहीं आतीं। लेकिन जब रात होती है, जब नींद से बोझल पलकें कपोलों पर झुक जाती हैं, तब उस समय आदमी के भीतर की बहुत-सी तस्वीरें जागती हैं। सोई हुई भावनाएं, छिपी हुई कामनाएं, अपूर्ण इच्छाएं, बीते हुए दिनों की निराशा और आनेवाले दिनों की आशाएं, यह सब जागने लगती हैं और सोनेवालों के चेहरे पर अपने संघर्ष की ऐसी तस्वीरें खींच देती हैं जो बहुधा दिन के समय दिखाई नहीं देतीं। इसलिए मैं भी बड़े आश्चर्य से यह चेहरे देख रहा था, जो किसानों के मोरचे से आये थे, और सुबह होते ही फिर उसी मोरचे पर चले जायंगे। इन चेहरों पर भी छिपी हुई कामनाएं, अपूर्ण इच्छाएं, मचल रही थीं। इनमें बहादुरी थी, और मजबूती। लेकिन इसके साथ-साथ मैंने इनके चेहरे पर एक अजीब-से सुनहरे सपनों की छाया देखी जिसने इन चारों चेहरों को, एक-दूसरे से भिन्न

होते हुए भी, एक-दूसरे के इतने निकट ला दिया था कि मुझे प्रतीत हुआ जैसे ये चारों एक ही माँ के बेटे हैं; जैसे मुझमें और उनमें भी उसी सुनहरे सपने का नाता है—वह सुनहरा सपना जो मैंने एक बार लेनिन के चेहरे पर देखा था; एक बार स्टालिन की मुस्कराहट में पाया था; एक बार शहीद यतीन्द्रदास की बेनूर आंखों में जमा हुआ देखा था। फिर मैंने सोचा मनुष्य कितना बलवान है, कितना विशाल है, जो पहले इस सपने को किसी किताब के एक पृष्ठ में, तस्वीर की एक झलक में, कल्पना-लोक के किसी कोने पर झिलमिलाते हुए देखता है, और फिर अपने जीवन के सम्पूर्ण संघर्ष से इस सुनहरे सपने को धरती पर साकार बनाने लगता है—यहां तक कि 'ताजमहल' बन जाता है, 'एफेल' टावर निर्माण हो जाता है, 'नीपर' का बांध खड़ा हो जाता है, और खेतों में ट्रैक्टर चलने लगते हैं, मजदूर कारखानों में शासन करने लगते हैं; नदी-नालों के रुख, पहाड़ों के खूंट और हवाओं के मिजाज बदल जाते हैं; और मनुष्य की मेहनत से एक नया संसार, एक नई प्रकृति, एक नई रचना जन्म लेती है।

मैं देर तक जागता रहा। रात डूबती-डूबती डूब गई। तारे एक-एक करके आकाश की अथाह गहराई में गुम होते गए। आखिर जब क्षितिज पर सफेद हवाई फिरने लगी तो किसीने निकट के घर से सितार पर 'असावरी' का धीमा-धीमा अलाप आरम्भ किया, और चारों ओर सुबह होती गई।

पांच बजे के करीब रमन ने आकर दरवाजे पर हल्की-सी थपकी दी। मैंने उठकर दरवाजा खोल दिया। रमन अन्दर आते हुए कहने लगा—"मालूम होता है, तुम सोये नहीं। खैर, यह भी अच्छा हुआ, क्योंकि तुम्हारी गाड़ी साढ़े छः बजे जाती है। अब क्या इरादा है? इस समय

पांच बजे हैं। छः बजे तक यहीं रुकोगे या स्टेशन चलोगे?"

मैंने कहा—"चलो स्टेशन चलकर गाड़ी का इन्तजार करेंगे।"

स्टेशन अँधियारे में एक छोटा 'शेड'-सा मालूम हो रहा था। तीसरे दर्जे के मुसाफिरखाने में लोग उकड़ू धरती पर सोये पड़े थे, जैसे हर तीसरे दर्जे के मुसाफिरखाने में सोये रहते हैं। दूसरे दर्जे के मुसाफिर-खाने में प्राचीन बनावट की पच्चीकारी की सागोन की मेज और कुरसियां थीं, और एक सफेद ग्लोबदार लैम्प जल रहा था। बाथरूम में चीनी के जग धरे थे, और शृंगार मेज के बीच में भी एक बड़ा जग पानी से लबालब भरा हुआ रखा था, जिसके ऊपर मकड़ी ने जाला बुन दिया था। इस मुसाफिरखाने में अठारहवीं शताब्दी का दृश्य था, जब कम्पनी बहादुर के साहब और उनकी घमंडी मेमें यहां आकर घड़ी-दो घड़ी के लिए ठहर जाती थीं।

रमन ने कहा—"तुम नाश्ता कर लो। यद्यपि तुम्हें इस समय भूख नहीं होगी, मगर फिर भी तुम नाश्ता कर लो। रास्ते में इतना अच्छा नाश्ता कहीं नहीं मिलेगा। पास में ही यहां एक जगह इतनी बढ़िया 'इडली' मिलती है कि उँगलियां चाटते रह जाओ।"

मैं और रमन उस जगह पहुंचे, जहां 'उदतम' के पेड़ के नीचे एक अँधेरा शेड था, और उससे भी अँधेरा लैम्प था, जो प्रकाश के बजाय अँधेरा फैलाता था। शेड से हल्का-हल्का धुंआ निकल रहा था, और दो-तीन मुसाफिर हल्की आवाज में हंसते हुए बातें करते हुए नाश्ता कर रहे थे। इडली की गरम-गरम ताजी कड़ाकेदार सुगन्ध जब मेरे नथुनों में घुसी तो मेरी भूख चमक उठी। मैंने एक बहुत बड़ा निवाला मुंह में डालते हुए रमन से कहा—"तुम भी खाओ।"

वह बोला—"मैं इस समय नाश्ता नहीं करता।"

मैंने कहा—"मैं कहां करता हूँ?" इतना कहकर मैंने लड़के को आवाज दी, "ए जी, एक नाश्ता इडली गौऊं, गौऊं।" मैंने अपनी बात

को कुछ तो बातों में, कुछ इशारों में और कुछ अपनी गोल-मोल निरर्थक हँसी से पूरा किया।

लड़का हँसने लगा।

रमन ने लड़के को नाश्ते के लिए मना कर दिया।

मैंने केले के पत्ते को, जिस पर नाश्ता रखा था, अपने सामने से हटाकर कहा—"अच्छा, तुम नहीं करते तो मैं भी नहीं खाऊँगा।"

रमन हँसा। फिर उसने गम्भीर होकर मुझसे कहा—"कॉमरेड, यह बात नहीं कि मैं नाश्ता नहीं करना चाहता। दरअसल बात यह है कि मैं दिन में केवल एक समय खाना खाता हूँ।"

"एक समय क्यों खाते हो जी?"

रमन ने कहा—"इसलिए कि दो समय खाना खाने की मेरी स्थिति नहीं है।"

मैं चौंका। रमन के चेहरे पर एक अजीब ही मुस्कराहट थी।

रमन कुछ देर ठहरकर फिर कहने लगा—"बहुत-से साथियों की इससे भी कुछ बुरी ही स्थिति होगी। कभी हम लोग काम के लिए बाहर निकल जाते हैं तो दो-दो दिन तक खाना नहीं मिलता। और तुम जानते ही हो कि गांव के किसान कितने गरीब होते हैं? और मैं तुमसे सच कहता हूँ कि दक्षिणी भारत का किसान तो बहुत ही गरीब है। हम उससे अपने लिए खाना नहीं मांग सकते। खाना मांगना सच-मुच में अपराध होगा।" रमन ने रुककर फिर कहा—"इसलिए मैं नाश्ता नहीं करूंगा। वरना आदत बिगड़ जायगी। बड़ी कठिनाई से यह आदत डाली है।"

मैंने चुपचाप अपना नाश्ता खत्म किया। हम दोनों उठ खड़े हुए और स्टेशन की ओर चलने लगे। रास्ते में भी अँधेरा था। लेकिन कहीं-कहीं परिन्दे पेड़ों से पर फड़फड़ाते हुए उठते और आकाश के उजाले में स्याह कैंचियां बनाते हुए उड़ जाते। कहीं-कहीं किसी झाड़ी के पास से 'अलंजी' के फूलों की तेज सुगन्ध आ जाती।

यकायक रमन ने कहा—"यह अलंजी के सफेद-सफेद छोटे-छोटे फूल, हमारे छोटे-छोटे प्रेम की यादगार हैं। कवियों ने इनपर गीत लिखे हैं, प्रेमियों ने इनके हार पिरोये हैं, प्रेमिका ने इन्हें अपने केशों में गूंथा है।.......जब मेरा ब्याह हुआ था........" रमन यकायक चुप हो गया।

बहुत देर के बाद मैंने पूछा—"तुम्हारी पत्नी कहां है ?"

बहुत देर के बाद उसने कहा—"मेरी पत्नी और बच्चा....कभी यहां, कभी वहां........कभी इस साथी के घर, कभी उस किसान के घर आश्रय लेते फिरते हैं।"

रमन ने झुककर रास्ते से एक पत्थर उठा लिया, और उसे एक पेड़ के तने की ओर जोर से फेंककर बोला—"सारा दक्षिणी भारत हमारा घर है।"

पत्थर जोर से उस पेड़ के तने से टकराया, और वहां से उछलकर एक जोहड़ में जा गिरा। पत्थर के गिरने की आवाज पानी से आई।

मैंने कहा—"तुम्हारा निशाना बहुत अच्छा है।"

त्रिचूर से वह स्थान अधिक दूर नहीं है, जहाँ मलयालम भाषा के महाकवि 'वालातोल' रहते हैं। यह एक छोटा-सा सुन्दर गाँव है; इसे 'शोरूथूरथी' कहते हैं। यह गाँव छोटी-छोटी पहाड़ियों से घिरा हुआ है, और इसके किनारे पर 'भारत' नदी बहती है। वालातोल का घर केले के सघन वृक्षों से घिरा हुआ ठंडा और आरामदायक है। साफ-स्वच्छ मवेशीखाने से ताज़े भूसे की महक आ रही है और दुधारू गायें जीभ निकालकर अपने बछड़ों के माथे चाट रही हैं। आंगन में बच्चों का शोर है। कभी-कभी वालातोल के परिवार की स्त्रियाँ धीमे-धीमे स्वरों में बातें करती हुई हँस पड़ती हैं। बसे हुए घरों में जो पवित्रता

और अपनापन होता है, मनुष्य और उसके सारे प्रेम के जो रिश्ते-नाते होते हैं, उनका वह तमाम लुभावनापन यहाँ भी मौजूद है ; और मैं जो इस समय घर से बहुत दूर हूँ, और दिन-रात सफ़र में हूँ, इसे विशेष रूप से अनुभव कर लेता हूँ और इन्दुचूड़न की मीठी मुस्कानवाले शर्मीले बालक को अपनी गोद में उठा लेता हूँ, जो मेरे अपने पुत्र की ही तरह भोला और प्यारा है। पहले तो वह मेरी गोद में ही नहीं आता, फिर आ जाता है तो अपना नाम नहीं बताता, नाम बताता है तो अपने हाथ का खिलौना मुझे नहीं देता, और फिर जब वह खिलौना भी मुझे दे देता है तो मैं उसे चूम लेता हूँ, और हम हमेशा-हमेशा के के लिए एक-दूसरे के पक्के मित्र बन जाते हैं।

महाकवि वालातोल शायरे इन्कलाब 'जोश' की तरह एक भारी-भरकम और शानदार व्यक्तित्व के धनी हैं। जोश साहब की तरह ही उन्होंने राष्ट्रीय आंदोलन के गीत गाये हैं, और मज़दूरों और किसानों के आंदोलन में 'रोमानी क्रांतिवाद' तक साथ दिया है। वालातोल की आयु इस समय सत्तर वर्ष की है। उनकी आवाज़ गहरी और गूँजदार है। वह इस समय सफ़ेद धोती पहने हुए, अपने लम्बे-लम्बे हाथों से मेरी ओर इशारा कर रहे हैं और मुस्कराते जा रहे हैं। वालातोल अँग्रेज़ी, उर्दू, या हिन्दी भाषा नहीं समझते, और मैं मलयामल से अपरिचित हूँ,इसलिए हमारी बात गोविन्दन् कुरूप के द्वारा होती है, जो वालातोल के पुत्र हैं, जिनकी आँखों में बुद्धि की गहरी झलक है।

गोविन्दन् कुरूप ने कहा—"पिताजी कहते हैं कि आपको तो मैं अपनी आयु का समझता था, आप तो बहुत छोटे निकले।"

इस पर इन्दुचूड़न, जो वालातोल के दामाद हैं, मुस्कराने लगे।

अच्युत कुरूप, गोविन्दन् कुरूप और वालातोल के दूसरे पुत्र और उनके दामाद इन्दुचूड़न जनता के आंदोलनों में बढ़-चढ़कर भाग लेते हैं, और वालातोल से विरोधी राय रखते हैं, क्योंकि वे मद्रास सरकार

के महाकवि हैं और इसके पुरस्कार-स्वरूप एक हज़ार रुपया वार्षिक वृत्ति पाते हैं।

"केवल एक हज़ार रुपया वार्षिक ?" मैंने पूछा—"इस हिसाब से तो उनकी मासिक तनख्वाह चौरासी रुपये से भी कम पड़ी। मेरा विचार है कि बम्बई कारपोरेशन का मेहतर इससे अधिक तनख्वाह लेता होगा। मैं एक मेहतर को इतना ही आवश्यक समझता हूँ, जितना एक कवि और मंत्री के काम को। लेकिन फिर तनख्वाहों में इतना अंतर क्यों है ? मद्रास सरकार के मंत्री हज़ारों रुपया मासिक तनख्वाह पायें, और उनका 'महाकवि' चौरासी रुपया महीना !......कांग्रेसी सरकार ने संस्कृति और कला की कितनी बड़ी इज्जत प्रदान की है, गौर करने की बात है ! इतने सस्ते दामों में एक जनता के महाकवि का धर्म लूट लिया।"

इन्दुचूड़न ने कहा—"यह बात तो सच है। लेकिन इस चीज़ का दूसरा रूप यह है कि ऐसा क्यों हुआ। और फिर हमारे ही घर में ? वास्तव में वालातोल के अतीत काल की बहुत-सी शानदार परम्पराएं हैं। लेकिन जब अपने उस वर्ग से सम्बन्ध-विच्छेद करने का अवसर आया तो कुछ तो वह बुढ़ापे के कारण और कुछ बूर्जुआई राष्ट्रीयता से गहरा नाता रखने के कारण आगे नहीं बढ़ सके। मध्यम श्रेणी के वर्ग का यह दुखान्त कई बार दुहराया जा चुका है और शायद अभी कई बार और दुहराया जायगा।"

वालातोल पुराने वृक्ष की तरह हमारे सिरों पर खड़े हम लोगों की बातों को सुनने का प्रयत्न कर रहे थे। क्योंकि वे बहुत ऊँचा सुनते हैं, इसलिए समझ नहीं सके कि हम लोग क्या विवाद कर रहे हैं ? उन्होंने धीरे से मेरे कन्धों को छूकर गोविन्दन् कुरूप से कुछ कहा।

गोविन्दन् कुरूप ने मुझसे कहा—"पिताजी कहते हैं, मुझे बड़ा दुःख है कि इन दिनों हमारी नृत्यशाला छुट्टियों के कारण बन्द है, वरना हम आपको असली कथाकली के नृत्य दिखाते।"

गोविन्दन् कुरूप ने अपनी बहन की ओर इशारा करके कहा—"यह हमारी सबसे छोटी बहन है और बहुत सुन्दर नृत्य करती है।"

छोटी बहन ने हँसकर इन्दुचूड़न के बच्चे को मेरी गोद से ले लिया, और कहा—"चलिए, खाना तैयार है।"

मैं सफर का थका हुआ था। खाना खाकर बहुत जल्दी सो गया। जब उठा तो संध्या की छाया गहरी हो चली थी और धूप मंद पड़ चुकी थी। चाय पीकर हम लोग भारत नदी के पुल पर जाकर खड़े हो गए, जिसके उस पार शोनूर का रेलवे जंकशन था। शोनूर के उस पार ऊँची-ऊँची घाटियां थीं, जिनसे अब सूरज नीचे उतर आया था और भारत नदी की सतह पर चमक रहा था।

इन्दुचूड़न मुझसे कहने लगा—"इन घाटियों के छोर पर 'मोपलाओं' का देश है। मोपला विद्रोह का नाम तो तुमने सुना ही होगा?"

मैंने 'हां' में सिर हिलाया।

मोपला मुसलमान हैं और अरब हैं और किसान हैं। जब उन्होंने विद्रोह किया तो वह एक शुद्ध किसान विद्रोह था। लेकिन जल्दी ही इसे साम्प्रदायिक रंग दे दिया गया, क्योंकि मोपला मुसलमान थे और उनकी धरती के मालिक हिन्दू थे। परन्तु यह साम्प्रदायिक झगड़ा नहीं था। बुनियादी तौर पर यह जमींदारों के खिलाफ किसानों का विद्रोह था। चूंकि जमींदार हिन्दू थे, और उनके किसान मुसलमान, इसलिए बाद में इस आन्दोलन को साम्प्रदायिक रंग दे दिया गया। यह आन्दोलन अपने सही रास्ते पर था, और बहुत-से हिन्दू किसान भी इनके साथ शामिल थे। एक बार जब स्पेशल पुलिस ने मोपलाओं पर हमला किया और उन्हें पराजित होना पड़ा, तो पुलिस के बहुत-से ब्राह्मण क्लर्क उनके हाथ आ गए। परन्तु मोपलाओं ने उनके साथ

कोई दुर्व्यवहार नहीं किया, बल्कि उन्हें अपने कैम्प में शामिल कर लिया। जहां वह पहले की तरह ही अपने टाइपराइटरों पर मोपलाओं के लिए वही काम करते रहे, जो वह इससे पहले स्पेशल पुलिस के लिए किया करते थे।"

"यह स्पेशल पुलिस कौनसी ?" मैंने पूछा।

"अंग्रेजों वाली स्पेशल पुलिस, जो मोपलाओं को कुचलने के लिए रखी गई थी। इस आन्दोलन को बड़ी बेरहमी से कुचल दिया गया। एक बार गांधीजी और मौलाना मुहम्मदअली ने इस क्षेत्र का दौरा किया था। लेकिन उस दिन के बाद कोई भी राष्ट्रीय नेता इस ओर नहीं फटका और यह आन्दोलन गलत हाथों में चला गया। मोपलाओं ने अपने आन्दोलन के दौरान में बड़े-बड़े अत्याचार सहे हैं। कमाण्डर हिचकॉक (Hitchcock) के अत्याचार तो सारे मालाबार में प्रसिद्ध हैं। जब मोपलाओं ने उसे भी कत्ल कर दिया तो अंग्रेजों ने जनता के इस सबसे बड़े शत्रु का भी मेमोरियल बनाया, जो आज भी हिचकॉक मेमोरियल के नाम से प्रसिद्ध है। इससे पहले काँग्रेसी नेता कहते थे कि वह शक्ति प्राप्त करते ही इस मेमोरियल को मिटा देंगे। किन्तु शक्ति प्राप्त करने के बाद न तो इस मेमोरियल को मिटाया और न ही स्पेशल पुलिस को मोपलाओं के देश से बाहर किया।"

"तो क्या उस जमाने वाली स्पेशल पुलिस अभी तक उस क्षेत्र में है ?"

"है क्या, उससे भी बढ़-चढ़कर काम कर रही है, वही सड़े हुए शासन की व्यवस्था है; केवल आजादी नई है।"

पुल के पार शोनूर जंकशन से गाड़ी के शंटिंग की आवाज सुनाई दी।

इन्दुचूड़न पुल के जंगले पर झुक गया और भारत नदी के पानी की ओर देखकर कहने लगा—"आन्दोलन के युग में इसी शोनूर जंकशन पर एक बार डेढ़ सौ मोपला किसानों को मालगाड़ी के एक डब्बे में बंद कर दिया गया था। ये किसान यहाँ से 'कोयम्बटूर' ले जाये जा रहे थे, जहाँ इन पर मुकदमा चलाया जाने वाला था। एक सौ पचास किसान उस छोटे-से मालगाड़ी के डब्बे में जानवरों की तरह बंद करके कोयम्बटूर भेज दिये गए। वहाँ जाकर जब डब्बा खोला गया तो आधे से अधिक किसान मर चुके थे। यह कोई कहानी नहीं है, यथार्थता है और इधर सारे अखबारों में छप चुकी है........"

गोविन्दन् ने धीरे-से कहा—"अंग्रेज सिराजुद्दौला के 'ब्लैक-हॉल' का जिक्र बार-बार करते हैं, लेकिन शोनूर के 'ब्लैक-हॉल' का कभी जिक्र नहीं करेंगे।"

मनुष्यता को मानवता के आदर्श तक पहुँचने के लिए न जाने कितने 'ब्लैक-हॉलों' से गुजरना पड़ेगा!

सूर्य डूब चुका था, भारत नदी की सतह पर तारे जुगनुओं की तरह टिमटिमाने लगे। शोनूर जंकशन पर एक इंजिन शंट कर रहा था; एक गाड़ी कोचीन जा रही थी। स्याह घाटियों के परे मोपला किसान अभी तक अपने अधिकारों के लिए लड़ रहे थे। भारत नदी के पुल से केरल की सीमा खत्म होती है और मद्रास की आरम्भ होती है। पुल पर आबकारी वालों का पहरा था। आबकारी के सिपाहियों ने माथे पर चन्दन के टीके लगा रखे थे। मैंने सोचा शराब की बन्दिश तो होती है, लेकिन जुल्म की बन्दिश कभी नहीं होती। मोपलाओं के देश में स्पेशल पुलिस आज भी क्यों मौजूद है?

गाड़ी हफ-हफ करती हुई बहुत दूर चली गई। पुल के उस पार से एक गाड़ीवान अपनी बैलगाड़ी में बैठा हुआ गाता हुआ इधर आ रहा था। गोविन्दन् ने कहा—"मोपलाओं का नेता भी एक गाड़ीवान ही था—एक गरीब मजदूर गाड़ीवान। उसका नाम था कुन्जू अहमद हाजी। उसके आंदोलन के नेतृत्व की अँग्रेज भी सराहना करते थे। उसके सिर के लिए बड़े इनाम की घोषणा की गई थी, लेकिन वह कभी पकड़ा नहीं गया। आखिर साम्राज्यवादियों ने अपनी पुरानी चाल चली। उससे कहा गया कि अगर वह अपने आपको पुलिस के हवाले कर देगा तो उससे किसी प्रकार का बुरा व्यवहार नहीं किया जायगा। लेकिन जब कुन्जू अहमद हाजी ने इस चाल में आकर स्पेशल पुलिस के आगे समर्पण किया तो उसे मृत्यु के घाट उतार दिया गया।........बिलकुल ऐसा ही गाड़ीवान था वह।" गोविन्दन् ने बैलगाड़ी में बैठे हुए गीत गाते हुए गाड़ीवान की ओर देखकर कहा।

गाड़ीवान हमारे सामने से गीत गाता हुआ गुजर गया।

परदेशी पोकेणुम् पट्टालम् विडेणम्।
भरणकार नम्मूण्डे कोंडरेनम्॥
पराइन्नू नाट्टुकार पाओमान थंगड़े।
परमण्डे अच्छिन्नें तोक मेन्नू॥

[लोग कहते हैं परदेशी चले गए और सिपाही वापस बुला लिए और अब अपना शासन है। क्या फिर भी गरीब परमान के बाप को फांसी पर चढ़ाया जायगा?]

"यह भी वही है........वही है," मैंने गोविन्दन् से कहा—"हमेशा एक गाड़ीवान दूसरे गाड़ीवान की तरह होता है।"

★★★

'अलवाई' जानेवाली गाड़ी में सफर खामोशी से कटा। मेरे डब्बे में दो पादरी थे, जिनकी बातों से मालूम होता था कि क्रिसमिस मनाने के लिए 'कोटायम्' जा रहे हैं। एक आदमी अलवाई के उपनगर में लारियों का ठेकेदार था, जिसने सुनहरी किनारी की धोती पहन रखी थी, और एक भड़कीली कमीज; जिसके चेहरे पर छिदरी-छिदरी दाढ़ी थी; वह मेरी ओर देखकर बार-बार मुस्कराता था। उसके चेहरे की पतली पिलपिली सुन्दरता और उसकी पेंचू मुस्कान मुझे जरा भी पसंद नहीं आई। इसलिए मैंने उसे मुस्कराने दिया और स्वयं खिड़की से बाहर के दृश्य देखता रहा, जो कि खिड़की के भीतर के दृश्यों से अधिक लुभावने थे। आखिर जब साढ़े तीन घंटे की यात्रा के बाद अलवाई का शहर निकट आया तो उस आदमी से नहीं रहा गया। उसने मेरे कन्धे पर हाथ लगाकर मुझे अपनी ओर देखने के लिए विवश कर दिया।

मैंने पूछा—"क्या बात है?"

"आप, आप कृष्णचन्द्र हैं?"

"जी हां।"

"मैं आपको जानता हूं।"

"कैसे जानते हैं?"

"आपने त्रिचूर में लैक्चर दिया था न?"

"जी हां।"

उसने बड़ी कोमलता से मुस्कराकर मेरी ओर देखकर हाथ जोड़ दिये। मैंने भी हाथ जोड़ दिये।

वह बोला—"मैं अलवाई में लारियों का ठेकेदार हूँ।"

मैंने कहा—"अच्छा हुआ आपने मुझे बता दिया, वरना मैं तो आपको स्वामी विवेकानन्द का चेला समझ रहा था।"

वह एकदम चौंका, फिर सँभल गया और बोला—"नहीं जी, मैं तो अलवाई के उपनगर में लारियों का ठेकेदार हूँ। बड़ी सड़क पर सरकारी लारियां चलती हैं; छोटी-छोटी सड़कों पर मेरी लारियां चलती हैं। मेरे पास ग्यारह लारियां हैं जी।"

नश्तर की नोक 'मेरे' में थी, और उसके बाद 'ग्यारह' में।

मैंने बात पलटकर कहा—"त्रिचूर में मैंने जो कुछ कहा उसके संबंध में आपका क्या विचार है?"

वह बड़े मीठे लहजे में हँसकर बोला—"बहुत अच्छे विचार हैं आप लोगों के। परन्तु माफ करना जी, जरा आप लोगों का आंदोलन कमजोर है।"

अब मैं चौंका—"वह क्यों?........कैसे?" मैंने पूछा।

वह बोला—"अगर जी, आपका आंदोलन अच्छा होता तो मेरे पास ग्यारह लारियां कैसे होतीं आज तक? अच्छा मुझे आज्ञा दीजिए, अलवाई का स्टेशन आगया।" उसने बड़ी नम्रता से हाथ जोड़े और हैण्डबेग हाथ में लेकर नीचे उतर गया।

उतरना मुझे भी था। लेकिन इससे पहले मैं उसकी गरदन मरोड़ कर उसकी सारी पिलपिली सुन्दरता को अच्छी तरह निचोड़ लेना चाहता था। मगर क्या करता, अभी तो उसकी बादशाहत थी। वह हमें निचोड़ रहा था और निचोड़कर यों फेंक रहा था जैसे लारी के पुराने पुर्जे कूड़े के ढेर पर फेंक दिये जाते हैं। इसलिए मैंने भी सख्ती से अपने होंठ अन्दर भींच लिए, और जाते-जाते उससे कहा—"ठेकेदार जी, तुम्हारी हर लारी के अन्दर हमारा ड्राइवर बैठा है जी, समझ लिया आपने जी?"

लेकिन उसने मुड़कर नहीं देखा।

★★★

अलवाई एक औद्योगिक शहर है। यहां पर खाद बनाने का कारखाना है और एलमोनियम के बरतन ढालने की कम्पनी है जो सारे भारतवर्ष में अपना माल भेजती है। यहां इतना एलमोनियम नहीं होता कि इस कारखाने की आवश्यकता को पूरा कर सके। इसलिए कम्पनी वाले विदेशों से भी एलमोनियम मंगाते हैं। कच्चा एलमोनियम मंगाकर भी यहां के कारखानेदारों को लाभ रहता है, क्योंकि एक तो मजदूरी बहुत सस्ती है, दूसरे बिजली भी बहुत सस्ती है। यह बिजली अलवाई से पचास मील दूर पल्लीवासल हाइड्रो प्रोजेक्ट से आती है।

अलवाई से सरकारी बस में बैठकर कोटायम को जाते हैं। कोचीन और त्रावंकोर के विलीनीकरण के बाद यहां बस सर्विस को सरकारी संपत्ति बना दिया गया है। (सरकारी संपत्ति, जिसे बहुधा लोग राष्ट्रीय-करण कहते हैं)। स्टेट एक्सप्रेस (सिगरेट नहीं, लारी) कोई साढ़े ग्यारह बजे दिन को अलवाई से कोटायम को जाती है।

कोटायम ईसाई बूर्जुआज़ी का गढ़ समझा जाता है। यह शहर दक्षिणी भारत में रबड़ के व्यापार का सबसे बड़ा केन्द्र है। त्रावंकोर में रबड़ के बगीचे बहुत स्थानों पर पाये जाते हैं। कोटायम में 'चेरिया-पल्ली' नाम का एक प्राचीन गिरजा है, जो कहते हैं छः सौ वर्ष पुराना है। कोटायम से कुछ मील दूर दक्षिणी भारत का सबसे पुराना गिरजा है। इसका नाम है 'कोराविलंगना'। यह गिरजा पहली शताब्दी ईसवी का है। इसी शताब्दी में रोमसागर के बहुत-से 'शामी' ईसाई दक्षिणी

भारत में आकर बस गए, जिनकी संतति आज तक कोटायम में पाई जाती है।

अलवाई और कोटायम के बीच स्टेट ऐक्सप्रेस बड़े सुन्दर और लुभावने पहाड़ी स्थानों से गुजरती है। सड़क के किनारे-किनारे छोटे-छोटे अनगिनत गांव नजर आते हैं, जिनके सुन्दर मकान 'चिंग कलिया' पत्थरों से बनाये गए हैं, और जिन पर नारियल के रेशों से छती हुई छः कोणवाली छतें दूर से बड़ी सुन्दर दिखाई देती हैं। लगभग हर घर के बाहर केरल में पीले-पीले केले टंगे होते हैं और धरती पर काली मिरचें धूप में सुखाने के लिए रखी होती हैं। काली मिर्च की बेल यहां की प्राकृतिक देन में से है। इसके अलावा 'टिपयोका' की गांठें आलू की भांति काटकर सुखाने के लिए जगह-जगह धूप में पड़ी दिखाई देती हैं। कहीं-कहीं कोई एक किसान बांस की बहंगी में छाछ भरकर एक गांव से दूसरे गांव जा रहा है। कुछ ईसाई औरतें गिरजा से वापस आ रही हैं। केरल की स्त्रियों का पहनावा बिना खास अंतर (धार्मिक, सामाजिक) एक-सा होता है—एक कमीज, एक धोती, जिसे वह मर्दों की तरह एक तहमद की तरह ही पहनती हैं। लेकिन ईसाई औरतें अन्तर रखने के लिए इस धोती को इस प्रकार बांधती हैं कि धोती का एक पल्लू पीठ पर 'कलगी' की तरह बाहर झलकता रहता है। इस कलगी को 'न्यूर' कहते हैं। छोटी बच्चियां सफेद फ्राक पहनती हैं। सड़क के किनारे सुबह से शाम तक हजारों बच्चे मिलते हैं, जो बस्ते बगल में दाबे या तो स्कूल जा रहे होते हैं, या स्कूल से आ रहे होते हैं। यह दृश्य रास्ते में बहुत सुन्दर होता है। भारतवर्ष के किसी भी क्षेत्र में यह दृश्य मैंने नहीं देखा। यहां की आबादी पचास प्रतिशत के करीब पढ़ी-लिखी है। मलयालम भाषा में बीस के करीब दैनिक पत्र निकलते हैं, जो हजारों की संख्या में छपते हैं।

छोटे-छोटे गिरजा, स्कूल और चाय की दुकानें रास्ते में बेशुमार दिखाई देती हैं। रास्ता कभी पहाड़ियों की तंग घाटियों से गुजरता है और कभी नीचे की मैदानी वादियों को काटता जाता है, जिनके बीच में इठलाती नदियां बहती हैं जिनके ऊपर लकड़ी के पुल हैं और जिनके दोनों ओर पान के हरे-भरे खेत अपनी सुन्दर हरियाली से आंखों को शीतलता पहुँचाते हैं। यह दिसम्बर का मास था, इसलिए बहुत-से स्थानों पर धान पीला पड़ गया था, और काटा जा रहा था। बहुत से स्थानों पर किसान नदी के किनारे-किनारे की ढलुवानों पर बांध बांधकर लकड़ी के 'चक्रम' से पानी निकाल रहे थे, और इस तरह पानी से नई धरती सींचकर उसे धान की खेती के लायक बना रहे थे। लकड़ी के चक्रम में दो से लेकर बत्तीस ब्लेड तक होते हैं और उसके सामने छोटी-सी मचान पर एक आदमी बैठकर अपने पांवों से इन लकड़ी के ब्लेडों को चलाता जाता है। लकड़ी का चक्रम चलने लगता है, और पानी एक खेत से होता हुआ दूसरे खेतों में बहता जाता है। लकड़ी के चक्रम के अलावा यहाँ धान के खेतों में पानी सींचने के लिए 'ट्यू' कुंए भी नजर आते हैं, जो 'मिस्र' के कुंओं की तरह पानी को एक सतह से दूसरी सतह पर ले जाते हैं। ट्यू में एक या एक से अधिक बांस के लम्बे-लम्बे डंडे होते हैं जिनके एक सिरे पर बोझ होता है, जो कुंए से बाहर रहता है और दूसरे सिरे पर डोल होता है जो कुंए में से पानी भरकर बाहर खेत में उलट देता है। फिर बोझ नीचे झुकता है और डोल कुंए के अन्दर चला जाता है। चक्रम और ट्यू के कुंए यहां के दृश्य के खास अङ्ग हैं।

और फिर कहीं-कहीं, जहाँ पानी धरती की सतह से बहुत पास होता है, वहां दो आदमी डोल को रस्सियों के बीच में बांधकर झूले की तरह झुलाते हैं। डोल पानी में गिरकर पानी भरकर बाहर आता है और झूले की झूलन में पानी बाहर खेत में फेंककर उसी झूलन के साथ जोहड़ में डूब जाता है। पानी की अधिकता से और दो मानसून ऋतुओं के कारण यहां धान की फसल साल में दो बार होती है।

वादियों में धान की फसल होती है और घाटियों में 'टिपयोका' होता है, जिसे यहां लोग 'मिर्चीनी' कहते हैं। मिर्चीनी का पौदा आठ फुट से ऊपर निकलता हुआ नजर आता है। इसकी डालों पर आलू की तरह फल लगते हैं, जिनमें आलू की तरह ही रवा होता है। मिर्चीनी की खेती 'कलमी' होती है, यानी पौदे के पतले तने को छः-छः इंच के भागों में काटकर खेतों में दबा दिया जाता है और उसके आस-पास मिट्टी के ढेर बना दिये जाते हैं। उनमें खाद भी दी जाती है और पानी भी। कुछ समय के बाद यह कलम धरती में जड़ पकड़ लेती है और मिर्चीनी की आँखों से हरी-हरी कोंपलें फूट पड़ती हैं। पहाड़ी क्षेत्रों में जहां चावल नहीं होता, वहां यही मिर्चीनी आम किसानों की खुराक है। वह उसके कतले करके, उसे सुखाकर और फिर आलू की तरह उबाल कर मछली के साथ खाते हैं। मिर्चीनी और मछली अच्छी खुराक है, क्योंकि मिर्चीनी में रवा होता है और मछली में प्रोटीन। लेकिन किसान लोग बहुत गरीब होते हैं, इसलिए मछली तो बाजार में बेच देते हैं और स्वयं केवल मिर्चीनी खाते हैं। इससे उनकी खुराक बेतौल हो जाती है। केवल मिर्चीनी खा-खाकर उनकी आँतों में घाव हो जाते हैं और वह मौत का निवाला बन जाते हैं। इसी कारण यहाँ के किसानों में आँतों के घाव की बीमारी प्रचलित है।

इस क्षेत्र में 'केशौंडी' का वृक्ष बहुत देखने में आता है। नदी के किनारे पहाड़ की चोटी पर पहाड़ की घाटी में, घाटी के नीचे ढलुवानों में, जहां देखिए यह वृक्ष मौजूद हैं। जहां धान की खेती होती है वहां भी यह वृक्ष उगता है और जहां धान नहीं होता वहां भी यह वृक्ष मौजूद है। जहां कुछ भी नहीं है, खाली पथरीली चट्टानें और सूखी घास है, वहां भी यह वृक्ष खड़ा है। इस वृक्ष को कोई नहीं उगाता,

कोई इसकी देखभाल नहीं करता। यह वृक्ष आप-ही-आप जहाँ इसे स्थान मिले उगता चला जाता है। लेकिन यह केशोंडी का वृक्ष है। कोई ऐसा-वैसा बेकार व्यर्थ का बूटा नहीं। जनाब यह पेड़ भारतवर्ष में सबसे अधिक डालर कमानेवाला है। इसका छोटा-सा कद मत देखिए। इसके असुन्दर भूरे मटमैले फूलों पर भी न जाइए। इन्हीं फूलों के झड़ जाने के बाद इनमें वह फल लगते हैं जिन्हें पश्चिम की ओर, विशेष करके अमरीका के लोग, बड़े शौक से खाते हैं, यानी केशोनट (काजू) त्रावंकोर में केशोनट उद्योग इन्हीं वृक्षों के सहारे जीवित है, और लाखों डालर कमाता है। यहीं से केशोनट साफ करके और भूनकर अमरीका भेजे जाते हैं, जहां से सोने के डालर आते हैं, और साम्राज्य की नई गुलामी आती है, जिसका नाम यारों ने 'साउथ ईस्ट एशिया' की आजादी रखा है। कहते हैं कि अब अमरीका और भारत में जो व्यापारिक संधि होने वाली है, उस पर दस्तखत इसी केशोनट के वृक्ष की कलम से किये जायंगे।

और एक केशोंडी पर ही क्या निर्भर है। केरल के जितने वृक्ष हैं सब-के-सब डालर कमाने वाले हैं। चाय, कॉफी, केशोनट, काली मिर्च, कुचला, एलम, रबड़। गिनते जाइए। हर वृक्ष डालर कमाता है। बस एक यहां केरल की समुद्री रेत डालर कमाने से रह गई थी। सो अब यह भी मालूम हुआ है कि यहां की सुर्ख रेत में 'यूरेनियम' की मात्रा है। इसलिए यह सुर्ख रेत यहां से बोरों में भरकर अमरीका भेजी जा रही है, और वहां से सोने के डालर आ रहे हैं और बाद में एटम बम आयंगे।

मैं लारी में बैठा-बैठा सोचता हूँ कि इतने सारे डालर जो केरल की धरती कमाती है, आख़िर जाते कहां हैं? क्या बात है कि इतने डालर कमाने के बाद भी आजतक केरल की जनता भूखी है। इतने सुन्दर पहाड़ों के मालिक होते हुए, इतने मूल्यवान खनिज-पदार्थों के होते हुए भी आज उनके सिर पर टोपी नहीं है; उनके पांव में जूता नहीं है; उनके पेट में चावल के दाने नहीं हैं, पीप के गलते हुए नासूर हैं। मालूम नहीं यह ढेरों डालर किधर चले जाते हैं! मालूम नहीं पन्द्रह अगस्त को जो आजादी भारत में आई थी, उसे कौनसा डाकू उठाकर ले गया है! वह आजादी केरल के किसानों के पल्ले तो पड़ी नहीं। हां, त्रिवेन्द्रम के बाजारों में मोटरें पहले की ही तरह घूमती हैं, और कोटायम में बाटा के सुन्दर जूते भी बिकते हैं। अलवाई में लारियों के ठेकेदार सुनहरी और भड़कीली धोतियां भी पहनते हैं। लेकिन मैं इस डालर कमानेवाली जनता को इन मोटरों में बैठे हुए क्यों नहीं देखता? क्यों मैं 'चंदनाशेरी' के किसानों को बाटा के जूते पहने हुए नहीं देखता? क्यों मैं यह भड़कीली पगड़ियां और धोतियां अलप्पी के नारियल के रेशे बुननेवालों के शरीरों पर नहीं देखता? और मैं सोचता हूँ, जिन लोगों ने जनता से उनकी मोटरें, उनके जूते, उनकी भड़कीली धोतियां छीन लीं, शायद वे ही केरल की जनता से उनकी मेहनत के सोने के सिक्के और उनकी आजादी भी छीनकर ले गए हैं और जनता के नंगे सिर पर नारियल के पत्तों की टोपी रख गए हैं; उनके पेट में चावल के दानों की बजाय आँतों के घाव दे गये हैं; और उनके पांव में जूते की जगह केरल के जहरीले सांपों के डंक छोड़ गए हैं।

और मैं सोचता हूँ, बहुत दूर की नहीं, बहुत पास की। इन पहाड़ियों से परे, उत्तरी मालाबार के लोग लड़ रहे हैं। केरल के दक्षिण और पूर्व में, उत्तर में और पश्चिम में, और केरल के बीच में चारों ओर लोग इन धोखेबाजों के विरुद्ध लड़ रहे हैं। बहुत जल्दी यह बाजी उलट जायगी और यह हेरा-फेरी, यह दलाली, यह चोरबाजारी,

यह राजनीतिक मदारीपन खत्म हो जायगा और केरल की जनता मौत के दम तोड़ते हुए हाथों से अपनी सम्पत्ति, अपनी मेहनत, अपना जीवन छीन लेगी। बहुत जल्दी, ऐसा मैं सोचता हूँ।

लारी के बाहर का दृश्य बड़ा मनोहर है। नारियल के ऊँचे-ऊँचे सफेद संगमरमरी तने, और उनके ऊपर पत्तों के हरे-हरे पंख फैले हुए हवा में झूमते हैं। दूर-दूर तक किसी नीली झील के किनारे जहां गहरी मखमली हरियाली है, और उदलम के वृक्ष हैं, जहां पानी में 'केरम पोयला' के बनफशाई फूल हैं, वहां औरतें धान के खेतों में गा रही हैं—

एनि इच्चू रामल्लू गुल्ला मे तम्बूरा कक्क कक्क
एनि कन्डा चरितियम वरसे !

(मालिक मेरी बदसूरती देखकर मुँह बनाता है। लेकिन मेरे मोतियों-जैसे चावल देखकर उन्हें छीनना चाहता है।)

हजारों वर्षों से केरल की स्त्री ने अपनी मेहनत के अभाव का उदासीन गीत धरती और आकाश के मालिकों को सुनाया है। लेकिन कोई टस-से-मस नहीं हुआ, क्योंकि इन्कलाब कभी दया, भिक्षा और ईश्वर-भक्ति से पैदा नहीं होता। वह तो शक्ति से प्राप्त होता है। इसीलिए तो आज केरल के धान के खेतों से एक नया गीत उग रहा है। वह गीत जो केशोंडी के वृक्ष की तरह हर स्थान, हर मुकाम पर उगने वाला है, और जिसकी गोद मेहनत के सुनहरी सिक्कों से भरी है।

तामसी यारन्नु चेरन्ननू भल्ला तोरे
तामसी चाल नमल्ल उन्नाई चित्तू तिरमू पोरे

(जिनके पास कुछ नहीं है वह जल्दी से इकट्ठे हो जायं। देर कर दी तो भूखे मर जाओगे।)

केरल के अमर शहीदों की मां ! आज से तेरे गीतों और तेरे चावल के दानों को तुमसे कोई नहीं छीन सकेगा। उत्तर की ओर वह देख, आज तेरे पुत्र घाटी के क्षितिज पर इकट्ठे हो रहे हैं।

त्रिवेन्द्रम हम लोग, रात के आठ बजे पहुँचे। लारी में साढ़े आठ घंटे की यात्रा रही। इस यात्रा में मेरे साथ श्रीधर और रूबी माधवन थे। दोनों विद्यार्थी थे और स्टूडेण्ट फेडरेशन के जोशीले कार्यकर्ता। श्रीधर त्रिवेन्द्रम में पढ़ता था और माधवन कोयलून में। दोनों को रास्ते में बड़ी भूख लगती थी और वे दोनों रास्ते-भर मेरे अल्पाहार पर आश्चर्य करते थे। श्रीधर बहुत कम बात करता था और माधवन उससे भी कम; माधवन का कद छोटा था तो श्रीधर का कद उससे भी छोटा। माधवन की आंखों में एक अजीब गम्भीरता थी तो श्रीधर की आंखों में शरारत और चंचलता झलकती थी। वह बहुधा मेरी ओर नाक सिकोड़ कर सूं-सूं करता और मेरी बार-बार की थुक-थुकी पर व्यंग से मुस्कराता।

लारी में हम लोग इकट्ठे बैठे थे और हमारे आगे-पीछे की सीटों पर दूसरी भांति के लोग बैठे थे। दूसरी भांति के लोगों से मेरा आशय ऐसे जीवों से है जिन्हें हमारी बातों से कोई लगाव नहीं था। हमारे सामने एक पादरी बैठा था, जो अपने एक साथी को, जो संभवतः मेरी तरह ही नया यात्री था, भिन्न-भिन्न स्थानों के सम्बन्ध में, नई धर्मपूर्ण बातों से परिचित करा रहा था। पिछली सीट पर दो और सज्जन थे, जो रास्ते-भर शिकार और औरतों की बातें करते रहे। कभी-कभी ऐसा होता है कि एक ही स्थान के सम्बन्ध में तीन भिन्न-भिन्न प्रकार की रायें टकरा जाती हैं।

जैसे, एक स्थान के सम्बन्ध में श्रीधर संकेत करके मुझसे कहता—"देखिए, यह 'शन्गनाशेरी' है। अपना कॉमरेड गोपालन इसी जगह का रहने वाला था—बड़ा बहादुर, लड़ाका, साहसी कॉमरेड। मजदूर उससे बहुत प्रेम करते थे। वह यहां का रहनेवाला था।"

पादरी इसी बीच में कहता—"यह शन्गनाशेरी है; यहां हमारे बिशप ने नया गिरजा बनवाया है। पालिया जाति की बहुत बड़ी संख्या को हमने ईसाई बना लिया।"

और पीछे की सीट से आवाज आती—"यह शन्गनाशेरी है, यहीं वह लड़की मारिया रहती थी, जिसका मैंने अभी तुमसे जिक्र किया। आह, क्या मुलायम लौंडिया थी—नारियल के गूदे की तरह मुलायम। ....।" इसके बाद उनकी आवाज धीमी खिलखिलाहट और कानाफूसी में परिवर्तित हो जाती और मैं सोचने लगता किस तरह एक ही स्थान के सम्बन्ध में, भिन्न-भिन्न भावों से सोचने वाले भिन्न-भिन्न रायें रखते हैं! और जैसे प्रत्येक बार उस स्थान का व्यक्तित्व परिवर्तित हो जाता है। परन्तु क्या वास्तव में ऐसा है? क्या सचमुच शन्गनाशेरी की इसीलिए प्रसिद्धि होनी चाहिए कि वह एक वेश्या है, या वह एक गिरजा है, या इसलिए कि वह एक शहीद की मां है? यह प्रश्न यथार्थ में दृष्टिकोणों का है। कुछ मनुष्य जनता को भेड़ें समझते हैं और देखते हैं कि इस जगह कितनी ईसाई भेड़ें हैं, कितनी हिन्दू भेड़ें। कुछ मनुष्य प्रत्येक वस्तु को कामुकता और वासना के चश्मे से देखते हैं कि इस स्थान पर ऐयाशी के कितने श्रोत हैं। और कुछ मनुष्य देखते हैं कि इस स्थान पर मनुष्य प्रगति कर रहा है कि नहीं। यहीं से साहित्य में प्रगतिशील तत्वों का आरम्भ होता है। स्पष्ट है कि शन्गनाशेरी की वेश्या की कहानी लिखने पर यथार्थवादी तो हो सकती है, लेकिन उसे प्रगतिशील नहीं कहा जा सकता।

इस बात का अनुभव मुझे आगे चलकर त्रिवेन्द्रम में भी हुआ, जहां मैं एक पल के लिए एक पेट्रोल पम्प के सामने की आलीशान इमारत देख रहा था और उसकी निर्माण-कला की सराहना कर रहा था। यकायक श्रीधर ने मुझसे कहा—"यहां पर पहली बार विद्यार्थियों ने सर सी० पी० रामास्वामी अय्यर के घिनौने हिटलरी शासन के विरुद्ध सभा की थी और पुलिस की गोलियां, लाठियां खाई थीं।" तो यकायक मुझे

जान पड़ा कि यह पेट्रोल पम्प केवल पेट्रोल भरने की मशीन नहीं; यह सामने की गगन-चुम्बी इमारत एक रमणीक कला नहीं; यह बाजारों में चलते-फिरते, खरीदते-बेचते मनुष्यों की भीड़ नहीं; यह सब एक लम्बे युग का परस्पर का सम्बन्ध है, जो जीवन की क्रांतिकारी शक्तियों को उत्पन्न करता है। यहां मनुष्य प्रगति करने के लिए जूझते हैं, मरते हैं, और नये सिद्धान्तों का निर्माण करते हैं। क्षण, जो मेरे सामने है, यह क्षण अकेला नहीं है। इसकी जड़ें अतीत में हैं और चेहरा भविष्य की ओर। प्रगतिशील साहित्यिक यदि सामने की गगनचुम्बी इमारत की ईंटें गिनना प्रारम्भ कर दे, तो वह गणितज्ञ तो हो सकता है, किन्तु प्रगतिशील साहित्यिक नहीं हो सकता। यदि वह पेट्रोल पम्प से पेट्रोल ले जाती हुई मोटरों के रूप-रंग को परखे और उसे अपने साहित्य में स्थान दे, तो हमें उसकी आश्चर्यजनक स्मृति और रंगसाजी का कायल तो जरूर होना पड़ेगा, लेकिन साथ-साथ उसकी समाज-दुश्मनी का शोक भी करना पड़ेगा। साहित्य पूरी समाज-मित्रता पर आधारित है। वह आधी सचाई, चौथाई सचाई, एक-बटा-आठ सचाई का कायल नहीं है; वह एक ऐसी सचाई चाहता है, जो प्रत्येक वस्तु को भिन्न-भिन्न दृष्टिकोणों से परखती है, उसकी लम्बाई, चौड़ाई, गहराई की विवेचना करती है; उसके वर्तमान में उसकी अतीत की जड़ें और फिर उसके भविष्य का चेहरा तलाश करती है क्योंकि ऐसी सचाई भी पूरी सचाई नहीं है, जो जीवन की चित्रकारी तो करती है, लेकिन उसका मार्ग-प्रदर्शन नहीं कर सकती—जनता की वह सचाई जो आगे बढ़ जाती है और मनुष्य का भाग्य बदल देती है। वह साहित्यिक साहित्यकार नहीं, जो इस सचाई के लिए नहीं लड़ सकता; उसका अस्तित्व धूल के कणों में बिखर जाता है। त्रिवेन्द्रम, कोयलून और अलप्पी के नगरों में मुझे ऐसा अनुभव हुआ जैसे उनके चप्पे-चप्पे पर मनुष्य की प्रगति के संघर्ष के निशान हैं। आज यह निशान आगे बढ़ते जा रहे हैं, और मैं उन नगरों को प्रत्येक क्षण परिवर्तित होते हुए देख रहा हूँ।

दूसरे दिन मेरा पहला भाषण यूनिवर्सिटी [कालेज में था। यह कालेज लगभग एक सौ वर्ष पुराना है। यहां के विद्यार्थी राजनीतिक आन्दोलनों में बहुत मजबूत और साहसी सिद्ध हुए हैं। देश के आन्दोलनों में इस कालेज के नवयुवकों ने हमेशा आगे बढ़कर भाग लिया है, बल्कि कई बार नेतृत्व भी किया है। सर सी० पी० रामास्वामी अय्यर के फासिस्टी दौर में, त्रिवेन्द्रम में सबसे पहले इस कालेज के विद्यार्थियों ने हड़ताल की थी, और उस जन-संघर्ष का, जिसमें कांग्रेस भी शामिल थी, मार्ग-प्रदर्शन किया था। इस कालेज में लगभग दो हजार विद्यार्थी होंगे। उनमें से आधे के लगभग इस सभा में उपस्थित थे। भाषण के बाद विद्यार्थियों ने बड़े दिलचस्प प्रश्न किये, जैसे—

आप मार्क्स और लेनिन के निबन्धों को साहित्य की श्रेणी में समझते हैं या नहीं ?

दक्षिण भारत की जनता पर हिन्दी भाषा जो सरकारी भाषा बनाकर थोपी जा रही है, उसके सम्बन्ध में आपके क्या विचार हैं ?

साहित्य में किस वस्तु को प्रमुखता प्राप्त है—रूप को या विषय-वस्तु को ?

टालस्टाय के साहित्य में जो धार्मिक प्रवृत्ति की झलक है, उसे कहां तक क्षमा कर सकते हैं ?

इन प्रश्नों से मालूम होता था कि विद्यार्थी कितने जागरूक तरीके से नये साहित्य को परखते हैं, और प्रगतिशील साहित्य से कितना लगाव रखते हैं। सभा के सभापति प्रोफेसर गुप्ता नायर थे। उन्हें भी प्रगतिशील साहित्य से बहुत लगाव था। वह स्वयं भी मलयालम भाषा के अच्छे नाट्यकार और अभिनेता माने जाते हैं। बड़ी सुलझी हुई बातचीत करते हैं, और उनकी वर्णन-शैली में और उनके व्यक्तित्व में एक विशेष आकर्षण और भावुकता पाई जाती है।

यूनिवर्सिटी कालेज के भाषण के बाद ही मुझे फौरन टाउनहॉल जाना था, जहां महात्मा गांधी कालेज के विद्यार्थियों की ओर से बड़ी सभा का आयोजन किया गया था। टाउनहॉल यहां से अधिक दूर नहीं था, इसलिए हम लोग पैदल ही चल पड़े। मेरे साथ गुप्ता नायर व दूसरे साथी थे। फूलों की क्यारियों और घास के मनोहर टुकड़ों के बीच में से गुजरते हुए हम लोग कालेज कैम्पस के एक विस्तृत मैदान में पहुंचे, जहां आम का एक घना वृक्ष खड़ा था।

नायर ने मुझसे कहा—"आपने यह आम का वृक्ष देखा ?"

"हां।"

"कैसा है ?"

मैं इस प्रश्न पर चकित रह गया। वृक्ष को भली-भांति देखकर मैंने कहा—"अच्छा है, यानी जैसे आम के दूसरे वृक्ष होते हैं वैसा ही यह भी है।"

नायर ने मुस्कराकर कहा—"एक बार इस आम के वृक्ष के लिए यूनिवर्सिटी कालेज के विद्यार्थियों ने हड़ताल की थी।"

"वह क्यों, कैसे ?" मेरा आश्चर्य बढ़ता जा रहा था।

नायर ने कहा—"कालेज के प्रबन्धक इस वृक्ष को कटवा देना चाहते थे। वे कहते थे कि इस वृक्ष से कैम्प की सुन्दरता में घाटा आ जाता है और विद्यार्थी कहते थे कि हम इस वृक्ष को कटने नहीं देंगे। कई वर्षों से यह वृक्ष यहां खड़ा है। कितनी ही बार सैकड़ों विद्यार्थियों ने तपती हुई धूप में इसकी शीतल छाया में विश्राम लिया है; हम इस वृक्ष को हरगिज नहीं कटने देंगे।"

मैं चुप हो गया।

मैंने पूछा—"फिर ?"

नायर ने कहा—"तुम वृक्ष देखते हो; विद्यार्थियों की सफल हड़ताल के परिणामस्वरूप यह वृक्ष आज तक यहां लहलहा रहा है।"

आम का वृक्ष अपनी सघन छाया फैलाये हमारे सामने खड़ा था। आम का पुराना, बूढ़ा, चौड़े-चकले तने वाला वृक्ष अपने सुहाने पत्तों की शीतल हरियाली लिये हुए इस समय कितना सुन्दर दीख रहा था! इसके तने से टिके हुए दो युवक किताबें पढ़ रहे थे। इसके हृदय पर कालेज के युवक और युवतियों के नाम सुन्दर मैडिलों की तरह चमक रहे थे। एक स्थान पर दिल खुदा हुआ था जिसमें एक तीर बिंधा था; एक स्थान पर लिखा था 'मैं प्रतिज्ञा करती हूँ, मैं जाऊँगी'; एक स्थान पर 'केवल तुम्हारा'; एक स्थान पर दो हाथ मिलाये जा रहे थे। नौजवानी की कितनी ही सुन्दर स्मृतियां, वचनबद्धता के कई सुन्दर क्षण, साथीपन के कितने ही लुभावने दृश्य, प्रेम के कितने ही ताजमहल इस वृक्ष के हृदय में सुरक्षित थे। मैंने सोचा, कितने जी वाले हैं हमारे प्रगतिशील विद्यार्थी! वह केवल वर्तमान और भविष्य के लिए ही नहीं लड़ते, वह भूतकाल के लिए भी लड़ सकते हैं; उसकी महान और भव्य परम्पराओं की रक्षा कर सकते हैं। वे केवल ट्रांसपोर्ट के मजदूरों के लिए ही नहीं लड़ते; वे एक आम के वृक्ष के लिए भी लड़ सकते हैं। केवल वही लोग जो जीवन से प्यार करते हैं, जो जनता से प्यार करते हैं, जो उनकी दैनिक लड़ाइयों में भाग लेते हैं, वही लोग सुन्दरता के लिए भी लड़ सकते हैं। सुन्दरता और कला की परम्परा की दुहाई देनेवाले लोगों को जरूर त्रिवेन्द्रम में जाकर इस वृक्ष को देखना चाहिए, जिसे प्राचीन सुन्दरता के रक्षकों और नवीन सुन्दरता के निर्माताओं ने अपने रक्त से सींचा है। इस सुन्दरता की रक्षा वे ऐशपरस्त साहित्यिक कैसे करेंगे, जो एक स्त्री के शरीर को पवित्र दृष्टि से नहीं देख सकते, जिन्हें बायरन की तरह प्रेमिका के होठों से लाश की बदबू आती है और जो जन-संघर्षों में भाग लेनेवाले प्रगतिशील लोगों को जेब-कतरा कहते फिरते हैं? जनता को अच्छी तरह मालूम है कि उनकी जेब पर डाका डालनेवाले वही लोग हैं जिन्होंने आजादी के नाम पर उनकी जेब काटी है और सुन्दरता का नाम लेकर आम के वृक्ष काटे हैं।

टाउन हॉल में लगभग एक हजार मनुष्य होंगे और इतने ही लगभग बाहर खड़े होंगे। इस भाषण के बाद मैं अपने होटल चला गया। यहां बहुत रात बीते तक विद्यार्थियों और प्रेस-प्रतिनिधियों से प्रगतिशील साहित्य पर बहस होती रही, जो दूसरे दिन बड़े कालमों में अखबारों में प्रकाशित की गई। इस पूरे दौरे के दौरान में प्रेस ने हमारे आन्दोलन की खबरों, भाषणों, वादविवादों और प्रेस-कान्फ्रेंसों की रिपोर्टों को खुलकर छापा, और प्रगतिशील लेखक संघ को अच्छी तरह प्रचारित किया। इसका सबसे बड़ा कारण सम्भवतः यह है कि केरल के जर्नलिस्टों की एक बड़ी संख्या, जो अलग-अलग अखबारों में काम करती है, हृदय से प्रगतिशील आन्दोलनों से सहानुभूति रखती है। इसका अनुमान स्वयं उनकी बातों से लगता था। ये लोग उत्तरभारत के कई एक जर्नलिस्टों की तरह अपने आपको मजदूरों से तनिक भी ऊँचा नहीं समझते; बल्कि स्वयं को मजदूर समझकर उन्होंने काम करनेवाले जर्नलिस्टों की एक संस्था बनाई है, जिसे यह लोग ट्रेड-यूनियन के ढंग पर चलाते हैं; प्रेस के पूँजीवादी मालिकों से अपने अधिकारों के लिए लड़ते-भिड़ते हैं। इसलिए ही इन लोगों को हमारी कठिनाइयों का अन्दाजा है और हमारी विचार-धारा से सहानुभूति है।

★ ★ ★

त्रिवेन्द्रम से दक्षिण की अन्तिम सीमा पर रासकुमारी है, जिसे लोग साधारणतया कन्याकुमारी कहते हैं। यहां जाने के लिए हमें थामस अर्थात् राजन की गाड़ी मिल गई। थामस को उसके मित्र राजन कहकर पुकारते हैं। राजन एक छोटे-से प्रेस का मालिक है। कुछ समय पहले वह एक साप्ताहिक अखबार भी निकालता था। वह अखबार चौरासी साल पुराना था। उस अखबार में दक्षिणी भारत की राजनीति के सारे रंग उभरे। सरकारपरस्ती से समझौतापरस्ती और समझौतापरस्ती से कौमपरस्ती और फिर कौमपरस्ती से साम्यवाद। साम्यवाद की ओर झुकते ही शासन ने उसे बंद कर दिया। राजन को अपने अखबार बंद होने का बड़ा दुःख था—"चौरासी वर्ष पुराना अखबार, जिसे मेरे पुरखों ने अपने रक्त से सींचा था ....," राजन ने गाड़ी घुमाकर त्रिवेन्द्रम के चित्र-घर के सामने से निकलते हुए कहा।

"घबराओ नहीं, उसे फिर प्रकाशित करूँगा। उस नाम से न सही किसी दूसरे नाम से निकालूँगा। जनता का अखबार कभी नहीं मरता। उसके उतने ही नाम होते हैं जितने साधारण लोगों के नाम होते हैं। वह नाम बदल-बदलकर सामने आता है और बाजारों, जंगलों, गलियों में अपनी वाणी सुनाता रहता है, और जब धरती पर जनता के दुश्मन अपनी शक्ति से उसके लिए विधान के सारे दरवाजे बंद कर देते हैं, तो वह अखबार धरती के नीचे चला जाता है। फिर वहां से एक हरी कोंपल की तरह फूटता है और दूसरे दिन उसके पृष्ठ फिर जनता के हृदयों में छपते जाते हैं और उसकी वाणी जंगलों, गलियों और बाजारों

में फिर से सुनाई देने लगती है, और फिर मनुष्य कानों-कान उसकी चर्चा करने लगते हैं। विद्यार्थी, मजदूर और किसान, अपने देश का हित चाहने वाले देश-भक्त उसे एक हाथ से दूसरे हाथ में सौंपते जाते हैं। जैसे दीपक से दीपक जग उठता है, मुस्कान से मुस्कान चमक उठती है उसी तरह जनता का अखबार जनता के हृदयों मे क्रान्ति की चमक जगमगाता हुआ चारों ओर फैल जाता है। पहरेदारों से घिरे हुए बंद कमरों के भीतर अत्याचारी कांप उठते हैं—यह अखबार फिर जीवित हो गया? अरे, हमने तो इसे कत्ल कर दिया था; कल ही कत्ल किया था, और परसों उसके भाई को कत्ल किया है; और उससे पहले एक और भाई को मारा था, और उससे पहले........। आज यह फिर जीवित हो गया। अखबार के शब्द उनकी आंखों के सामने अपनी अमर मुस्कान की ताल पर नाचने लगते हैं—हम नहीं मर सकते, क्योंकि हम जनता के शब्द हैं; और कोई हमें खरीद नहीं सकता; कोई हमें बेच नहीं सकता; कोई हमारे गले में फांसी का रस्सी नहीं लटका सकता, क्योंकि हम में जनता की आवाज है, उनके हृदय और आत्मा की गूंज है। एक व्यक्ति मारा जा सकता है; दो आदमी मारे जा सकते हैं; दो लाख आदमी मारे जा सकते हैं; दो लाख प्राणी मारे जा सकते हैं, किन्तु सारी जनता कत्ल नहीं की जा सकती;........ इसीलिए फिर आज हम तुम्हारे सामने नाच रहे हैं; कल तुमने अपने जाने हमें कत्ल कर दिया था लेकिन हम मरे नहीं थे; हम तो एक बीज की तरह धरती के हृदय में छिप गए थे; वहां हमें गरमी मिली; किसी का लहू मिला; किसी का प्यार मिला; किसीने अपनी स्वांस दी, और आज हम फिर जीवित होकर धरती से बाहर निकल आए हैं और तुम्हारे सिर पर इतिहास की तलवार बनकर नाच रहे हैं। हमसे डरते हो अत्याचारियो........तुम्हारा भय निमूल नहीं है, क्योंकि अत्याचारी मिट जाते हैं; अत्याचार समाप्त हो जाता है और अत्याचारी के शब्द भी मर जाते हैं, लेकिन जनता जीवित रहती है और

उनके शब्द भी जीवित रहते हैं और उनका साहित्य भी हमेशा-हमेशा अमर रहता है।

राजन की गाड़ी कन्याकुमारी की ओर भागी जा रही थी और राजन कह रहा था—"अखबार के बन्द होने का मुझे बड़ा दुःख है। मुझे ऐसा प्रतीत होता है जैसे मेरा बड़ा भाई मुझसे छीन लिया गया हो।........अब केवल मैं रह गया हूँ, और मेरी पत्नी है, और मेरा छोटा बच्चा।...........घर में अखबार नहीं है, तो घर सूना-सूना लगता है।"

विद्यार्थी संघ के प्रेसीडेन्ट गोपी ने कहा—"अखबार बंद होने के थोड़े दिन बाद राजन के घर की तलाशी भी हुई थी।"

"क्यों ?" मैंने पूछा।

"उनका खयाल था, शायद मैंने अपने घर में कम्युनिस्टों को छिपा रखा है।" राजन ने धीरे से मुस्कराते हुए कहा।

हँसमुख गोपी ने कहा—"हाँ, अगर खाली तलाशी ली जाती तो फिर कोई बात नहीं थी। यह तो होता ही रहता है। लेकिन उन्होंने तो घर का कोना-कोना छान मारने के बाद घर की प्रत्येक चीज को तोड़ दिया।"

राजन ने कहा—"पुलिस पानी के घड़ों और मिट्टी के घड़ों में झाँक-झाँककर देख रही थी, कहीं उनमें कोई कम्युनिस्ट तो नहीं छिपा है? फिर उन्होंने रसोई के सारे बरतनों को तोड़ दिया, किताबें फाड़ दीं; रेडियो, पलंग, कुरसी, मेज, बच्चे का झूला, प्रत्येक चीज तोड़ डाली गई।"

"बच्चे का झूला भी ?" मैंने चकित होकर पूछा।

"हां," राजन ने कहा—"उन्हें सन्देह था कहीं झूले में कोई कम्युनिस्ट मौजूद न हो।" फिर थोड़ी देर रुककर राजन ने कहा—"और वह गलती पर भी नहीं थे। झूले में मेरा बच्चा लेटा......."

फिलिप्स ने राजन के कन्धे को छूकर कहा—"तुम्हारी कार तो सुरक्षित है ?"

"वह भी इसलिए कि मेरी कार दूसरों के काम आती रहती है और बहुधा ऐसे आदमियों के लिए काम आती है जिनके चलने-फिरने के सम्बन्ध में पुलिस को जानकारी की इच्छा हर समय रहती है। इसी-लिए मेरी कार मेरे पास मौजूद है और मुझे इसके लिए जब चाहूँ तब अधिक पेट्रोल भी मिल जाता है।"

गोपी ने कहा—"हां, पुलिस का काम हलका हो जाता है न।"

अब हम त्रिवेन्द्रम से छः मील के लगभग आगे निकल गए थे। राजन ने संकेत करके बताया—"शहर की बस-सर्विस यहां तक चलती है, हालांकि शहर यहां से छः मील दूर रह गया है।"

"वह क्यों ?" मैंने पूछा।

"यहां एक कांग्रेसी एम० एल० ए० रहते हैं; इसलिए उन्हें लेने के लिए म्युनिसिपल सीमा से छः मील बाहर तक बस-सर्विस चलती है।"

कोरियन ने कहा—"वह इमारत देखते हो तुम ? वह ?"

"हाँ, क्या है वह ?"

"वह बूचड़खाना है। यहां गांधीजी की बकरियां कटती हैं। तुम्हें मालूम है इस बूचड़खाने को बनवाने का ठेका किसने लिया था ? एक कट्टर कांग्रेसी ने।........अहिंसा धर्म की जय........"

मैंने कहा—"अहिंसा का धर्म-शास्त्र बकरियों और मनुष्यों के लिए नहीं है। वह केवल देवताओं और चोरबाजार वालों के लिए निश्चित हो चुका है।"

गोपी ने कहा—"और यह जगह जो तुम देख रहे हो, इसका नाम है 'छःकेला'।"

"छः केला क्यों ?" मैंने पूछा।

फिलिप्स ने कहा—"किसी युग में यहां केलों के छः पेड़ होंगे।"

मैंने कहा—"मुझे बम्बई में अपना घर याद आ रहा है। उस

जगह का भी अजीब नाम है, 'चार बंगला'। कभी वहां भी चार बंगले होंगे।"

"मगर साहब, आपके चार बंगले में क्या ऐसा कोई तालाब भी है जहां मेंढक नजर नहीं आते हों?" राजन ने पूछा।

"नहीं।"

"तो जरा इस तालाब को देखते जाइए। इस तालाब में एक भी मेंढक नहीं है। पुरोहित लोग कहते हैं कि राजा इन्द्र ने मेंढकों को श्राप दिया था। जब देवाधिपति देव इन्द्र गौतम ऋषि की अनुपस्थिति में उनकी पत्नी अहिल्या से संभोग करने जा रहे थे तो उस समय ये मेंढक बहुत हल्ला मचा रहे थे। उनके हल्ले से चिढ़कर इन्द्र देवता ने क्रोधित होकर इस तालाब के सारे मेंढकों को श्राप दे दिया। तब से ही यहां इस तालाब में एक मेंढक भी नहीं मिलता।"

मैं आश्चर्य से राजन के मुंह की ओर देखता रह गया।

राजन मुस्कराकर बोला—"यह तो हुई देवमाला, और अब वास्तविकता केवल यह है कि इस तालाब के जल में गंधक का मिश्रण है। इसी कारण यहां मेंढक नहीं होते। देखते जाइए।......इस तालाब के पानी की पीली रंगत।........यह गंध........"

तालाब बहुत पीछे रह गया था, और राजन कह रहा था—"इस गन्धक के कारण इस भाग के निवासियों को फोड़े-फुन्सियां और चर्म-रोग की बीमारियां बहुत कम होती हैं और यहां के रहनेवाले अधिकतर स्वस्थ व निरोग पाये जाते हैं और दूसरे भागों की अपेक्षा अधिक आयु तक जीवित रहते हैं।"

अब गाड़ी एक छोटे-से कस्बे के बीच से गुजर रही थी। राजन ने मुझे बताया—"यहां नारियल के रेशे बुनने के दो बड़े केन्द्र हैं। मगर आजकल यहां कोई काम नहीं हो रहा। मजदूर बेकार बैठे हैं।"

"क्यों?"

"बस इतनी-सी बात है कि नारियल के रेशे चोरबाजार में चले

गए हैं, केन्द्र बन्द हो गए हैं, और मजदूर बेकार बैठे हैं।"

रास्ते में स्थान-स्थान पर गिरजे और मस्जिदें दिखाई देती थीं। जब मैंने इनकी अधिकता के सम्बन्ध में इशारा किया, तो राजन ने कहा—"यह बात नहीं कि यहां के लोग अमीर हैं। इस क्षेत्र के लोग केरल और तामिल नाड के दूसरे क्षेत्रों की तरह बदस्तूर गरीब हैं। लेकिन वास्तविकता यह है कि बेचारी जनता इतनी भोली और अन्ध-विश्वासी है कि अभी तक धार्मिक इन्द्रजाल में उलझी हुई है, और समझती है कि अगर इस दुनिया में गरीब हैं तो क्या, अगली दुनिया में उन्हें सब कुछ प्राप्त हो जायगा। साम्प्रदायिक संस्थाएं प्रत्येक सम्भव उपाय से इस विचार-धारा को बलवान बना रही हैं, इसलिए आप देखेंगे कि मनुष्य गरीब हैं; गिरजों के पादरी, मस्जिदों और मजारों के प्रबन्धक मुल्ला बहुत अमीर हैं।"

"पादरियों और मुल्लाओं में कभी लड़ाई भी हुई है?" मैंने पूछा।

राजन ने मुझे बताया—"यह लड़ाई इस क्षेत्र की विशेषता है। मुसलमान संख्या में बहुत कम हैं, मगर लड़ाई की घटनाएं बहुत हैं। ये लोग अधिकतर मछुए हैं। इनमें आपस में चलती आई है। लड़ाइयां होती हैं। सर-फुटौवल और रक्तपात अब धार्मिक-कर्तव्य में शामिल हो चुका है। फिर यह झगड़े अदालत तक पहुंचाये जाते हैं, और इसका सारा प्रबन्ध एक ओर गिरजा, और दूसरी ओर मजार के मुल्लाओं की ओर से होता है। वही लोग इस 'नेक काम' के लिए पैसा लगाते हैं, जिसका हिस्सा उन्हें इस तरह मिलता है कि हर वर्ष कोई नया गिरजा खड़ा हो जाता है, या कोई नया मजार बन जाता है। और फिर नया झगड़ा आरम्भ हो जाता है।"

"बिशप ऑफ कोटायम, दक्षिण भारत के सबसे बड़े धनवान व्यक्तियों में से हैं," गोपी ने मुझे बताया।

राजन ने चाय पीने के लिए गाड़ी एक स्थान पर रोक दी। गाड़ी के रुकते ही बहुत-सी स्त्रियों ने उसे घेर लिया। उन स्त्रियों ने बड़े

भड़कदार रंग की साड़ियां पहन रखी थीं, जिससे उनका स्याह रंग खूब खिल रहा था; कानों में अजीबो-गरीब बनावट के कर्ण-फूल थे, जैसे सांप कुंडली मारकर बैठा हो। गरदन, चेहरा, बांहें अच्छी तरह से जगह-जगह गुदे हुए थे। उनके हाथों में पालमायरा से बनी हुई सन्दूकचियां थीं, और बटुए, मूढ़े।

चाय की बजाय हमने पालमायरा का ठण्डा और मीठा रस पिया। सामने एक दुकान पर एक कलैण्डर लगा था, जिस पर पोप और नेहरू का चित्र था।

पोप और नेहरू! मैंने आश्चर्य से देखा—"यह भी अजीब कैलेण्डर है!"

फिलिप्स ने मुस्कराकर कहा—"इसमें अजीब बात क्या है?"

फिर रुककर उसने कहा—"जिस आदमी ने यह कैलेण्डर छपाया है, उसकी 'राजनीतिक समझ' की मैं दाद देता हूं! यह कैलेण्डर आपको स्थान-स्थान पर लटका हुआ मिलेगा। एक बात और इस 'तटस्थता' के युग में। यहां भी पोप का वह फरमान आ पहुँचा है और उस पर अमल भी हो रहा है—वह फरमान जिसमें ईसाइयों को साम्यवादियों से सावधान रहने की ईश्वरीय दलील दी गई है, और उन्हें अपने हलके में साम्यवादियों को खत्म कर देने की आज्ञा दी गई है। अब यहां भी शायद कुछ दिन बाद चर्च हमारे बेटों को बपतिस्मा नहीं देगा; हमारे ब्याहों को स्वीकार नहीं करेगा; हमें कबरों में स्थान नहीं देगा। हम लोग आगे चलकर क्या करते हैं, उसे तो संसार बाद में देखेगा। मगर चर्च के जिम्मेदार धर्माधिकारी आज हमारे साथ क्या कर रहे हैं, यह सबको मालूम है।"

राजन ने मुझसे कहा—"यह सन्दूकची लेते जाओ, यह यहां की विशेष सौगात है।"

मैंने सिर हिला दिया।

"अच्छा तो यह बटुआ?"

"नहीं।"

"यह पंखा ?"

"नहीं।"

"यह पालमायरा की लकड़ी का बना हुआ किताबदान ?"

"तो क्या लोगे ?"

"मुझे यह कैलेण्डर दे दो जिस पर पोप और नेहरू का चित्र छपा है। यह तो 'हिन्दुस्तान की खोज' से बढ़कर खोज है। तुम जानते हो इस समय मेरे जी में क्या है ? मैं एक ऐसा दर्पण चाहता हूँ, जिसमें सारी वस्तुएं उलटी दिखाई दें। ऐसी उलटी कि जब मैं भविष्य को देखना चाहूँ तो मुझे भूतकाल दिखाई दे। यदि एक ऐसा दर्पण मेरे पास हो तो वह दर्पण लेकर मैं राष्ट्रीय आन्दोलन के सारे शहीदों को और देश-भक्तों को बुलाऊं। उन लोगों को भी जिन्होंने पार्लियामैण्ट में लड़ाई लड़ी, और उन लोगों को भी जिन्होंने खेलों में युद्ध किया, और उन लोगों को भी जिन्हें सन् १९४२ में फांसी पर चढ़ाया गया। मैं चाहता हूं कि दादाभाई नौरोजी से लेकर सरदार भगतसिंह तक सबको एक कतार में खड़ा कर दूं और फिर एक-एक को यह कैलेण्डर दिखा-कर पूछूँ—"क्या तुमने आजादी की लड़ाई इस कैलेण्डर के लिए लड़ी थी ?"

पोप और नेहरू........पोप और नेहरू !!

"पहुंची वहीं पै खाक जहां का खमीर था।"

राजन ने दुःख से सिर हिलाते हुए कहा—"इस कैलेण्डर को देखकर सचमुच दुःख होता है और अनुभव होता है कि सन् ४२ में भारत में जो कुछ हुआ वह इन्कलाब नहीं था, इन्कलाब का गर्भपात था।"

राजन ने गाड़ी स्टार्ट करते हुए कहा—"भूतकाल देखना चाहते हो

तो इसके लिए दर्पण की क्या आवश्यकता है ? यहां से निकट ही शाही परिवार के प्राचीन महल हैं। आओ, तुम्हें वह दिखलायें। उसके पास ही हमारे डच कमाण्डर की कबर है, जिसने हमारी रियासत की उन्नति की, कैप्टन डिलनाय।"

"डच कमाण्डर ?"

"हां, वह एक डच समुद्री बेड़े में कप्तान था। उसने हमारी रियासत पर हमला किया, लेकिन हमारे कमाण्डर ने उसे पराजित किया। बाद में उस समय के महाराजा ने बड़ी समझदारी से काम लेकर उसे अपनी फौज में नौकर रख लिया, और उसे सेनापति बना दिया। उस कमाण्डर ने बहुत-सी जागीरें और छोटी-छोटी रियासतों को फतह किया और हमारी रियासत में उन्हें विलीन कर दिया।"

एक पहाड़ी टीले की तराई में एक खुले गिरजे के भीतर जिसमें छत नहीं थी, कैप्टन डिलनाय की कबर थी—बिलकुल सीधी-सादी कबर। मुझे खुली छत के गिरजे बहुत अच्छे लगते हैं। ऐसा मालूम होता है कि उनकी छत विशाल आकाश है। इस कबर में अपनी सादगी के अलावा एक विशेष भव्यता और व्यक्तित्व था। गिरजे के भीतर और बाहर घास के सुन्दर टुकड़े थे। इमली के बड़े-बड़े वृक्ष शान्त भाव से कच्ची सड़क पर छाया बिछाये हुए खड़े थे। कबर से वापस आकर हम लोग इसी कच्ची सड़क पर धीरे-धीरे चलने लगे और मैं उस युग की बातें सोचने लगा, जब डच बेड़े और फ्राँसीसी बेड़े, पोर्तुगीज व अंग्रेजी बेड़े भारतीय तटों पर अपने पांव जमा रहे थे। जब औद्योगिक क्रान्ति के बाद का यूरोप सामन्तशाही युग के मुगल-भारत पर छा रहा था। मुगलकालीन भारत ने यूरोप की क्रान्ति से फायदा नहीं उठाया, और स्वयं मिट गया। आज का भारत फिर साम्यवादी क्रान्ति से फायदा नहीं उठा रहा। यह भारत भी मिट जायगा, क्योंकि उत्तम वस्तु हमेशा घटिया वस्तु पर हावी हो जाती है।

नागफनी की ऊँची-ऊँची झाड़ियों से गुजरते हुए राजन यकायक

रुक गया, और एक पेड़ की ओर संकेत करके बोला—"जानते हो, यह कौनसा पेड़ है ?"

"कौनसा है ?"

"यह संदल का पेड़ है।"

"छिः, छिः," यकायक मेरे मुँह से निकल पड़ा—"यह सड़ा-बुसा, नंगा-बूचा, स्याह, खुरदरे तनेवाला, चन्दन का पेड़ है ? बारीक-बारीक मुरझाई हुई पत्तियां, पीले-से नकली मुर्दा फूल। अरे ! यह चन्दन का पेड़ है ? यह औघड़, बदसूरत चमरख-जैसा तना, इसका........संदली बांहें........छिः, छिः।........सन्दली बाहें ! कैसा धोखा दिया है इस पेड़ ने उर्दू के शायरों को ? अगर ये लोग अपने जीवन में इस पेड़ को एक बार भी देख लेते, तो कभी सन्दली बांहों का नाम नहीं लेते। क्या सन्दली बांहें ऐसी ही खुर्री-खुरदरी और बदसूरत होती हैं ? हमारी शायरी यथार्थता से कितनी दूर रही है, इसका अनुभव मुझे सन्दल का पेड़ देखकर हुआ। यानी कितना बदसूरत, टुच्चा ओछी जाति का पेड़ है कि देखकर जी जलता है। मैंने राजन से कहा—"दक्षिणी भारत में आकर दो नामों का जादू बुरी तरह टूटा है, एक नेहरू का, दूसरे संदल का। हालांकि दोनों नाम बड़े सुन्दर और सुगन्धित मालूम देते थे।"

राजन हँसने लगा, बोला—"खैर, वैसे सन्दल बड़ी उपयोगी चीज है।"

"किधर है वह सन्दल ?" मैंने उससे पूछा।

"इस पेड़ की छाल अलग कर देते हैं; उसमें सन्दल नहीं होता। फिर उसके तने के ऊपर की लकड़ी को भी अलग कर देते हैं। फिर तने के भीतर जो लकड़ी का घेरा होता है, जिसे तने की 'पथ' कहते हैं, इस पथ में से सन्दल का तेल निकलता है।"

चारुदत्त ने कहा—"अब आगे चलो जी। शाही महल देखना है। मगर जरा जल्दी-जल्दी, क्योंकि अभी रास्ते में बहुत-से रमणीक स्थान और भी मिलने वाले हैं।"

इन शाही महलों की इमारतें चार सौ वर्ष और कुछ छः सौ वर्ष पुरानी थीं। यह शाही महल मालाबारी शिल्पकारी का अच्छा नमूना है। छः कोणवाली छत—नारियल के पत्तों की भांति बिछी हुई। झण्डा लहराने का कोडीमरम्, कम्बूदी स्तून; हॉलैण्ड के सागौनी पलंग; चीनी ताले। कौनसी चीज भारत की है, कौनसी चीज बाहर की है; कौनसी चीज शुद्ध है, कौनसी चीज अशुद्ध है? ऐसा प्रतीत होता है कि संसार आज ही नहीं आज से पहले भी कभी अलग नहीं हुआ। संसार सदा से एक रहा है। कहीं पर उन्नति जरा पहले हो जाती है, कहीं पर जरा देर में और अधिक रक्त-पात से होती है। लेकिन ये सारी सभ्यताओं और शिक्षाओं के भण्डार नये और पुराने शास्त्र, एक-दूसरे में मिश्रित होकर आगे बढ़ते रहे हैं, और मनुष्य को उन्नतिशील समाज की ओर ले जाते रहे हैं। छः सौ साल के महलों को देखकर भी यही अनुभव होता है कि जैसे यह महल नहीं हैं, अतीत की नदी हैं, जिनमें भिन्न-भिन्न लहरें, भिन्न-भिन्न धाराएं, एक-दूसरे से टकराकर आगे बढ़ती रही हैं।

ये महल चार मंजिल ऊंचे हैं। फ्रेंच प्रोफेसर लेवी का विचार है कि उनकी मालाबारी शिल्पकला सबसे ऊंची है और यह भी कि स्याम, हिन्दचीन और चीन में जो मंगोलिया की शिल्पकारी चालू है, वह वास्तव में यहीं से उधार ली हुई है। इस ऊंचे चार मंजिलवाले महल में सागौन की वह लकड़ी लगाई गई है, जो छः सौ वर्ष गुजरने के बाद भी उसी तरह मजबूत है, जैसे आरम्भ में होगी। सबसे ऊपर की मंजिल में शाही परिवार के देवता रहते हैं। इस देवता के कमरे में आज तक घी का दीपक जलता है—घी मालूम नहीं असली या नकली। लेकिन दीपक जरूर असली पीतल का है। उस पर एक घुड़सवार की इतनी अच्छी मूर्ति खुदी हुई है कि मैंने ऐसी मूर्ति कहीं नहीं देखी। देवता के कमरे में चारों ओर हिन्दू देवमाला के चित्र हैं, जिनमें चीनी सभ्यता झलक मारती है। देवता का पलंग सागौन की लकड़ी का है,

और हॉलैण्ड के नमूने का है। इसे एक डच बढ़ई ने बनाया था। इस पर जंगली जानवरों के चित्र अंकित हैं, और उनके बीच में एक 'सलीब' (क्रॉस) का निशान भी है। सुना है जब त्रावंकोर और कोचीन की रियासतों का विलीनीकरण होने लगा, तो महाराजा ने कहा कि वह अपने महल के इष्ट देवता से इसकी आज्ञा ले लें। मगर सरदार पटेल राजी नहीं हुए और रियासतें एक-दूसरे में विलीन कर दी गईं। शायद देवता अब इस महल में नहीं रहते। अब तो केवल लकड़ी के खम्भों पर खुदे हुए हरे-हरे तोते अपनी चोंचें खोले हुए मौन भाषा में कह रहे हैं, राम नाम सत्य है........

रानियों के कमरे में दर्पण लगे हुए हैं और झूले भी। दीवारों पर गहनों से लदी हुई स्त्रियों के चित्र हैं, या कृष्णजी की बाल-लीलाएं हैं। चित्रों में स्त्रियां बहुत मोटी दिखाई देती हैं। मालूम होता है खाने के सिवाय उन्हें और कोई काम नहीं मिला। शाही भंडार की जंजीरें और ताले चीन देश के हैं। जान पड़ता है कि शाही परिवार को भारतीय तालों पर विश्वास नहीं था। लंगरखाने में एक हजार से अधिक आदमियों के बैठने का स्थान है। परन्तु आजकल तो राशनिंग है। और यह है भी प्राचीन महल। दरबार की चौकियां बहुत ऊंची हैं और दर्शन देने के झरोखे पत्थर की मजबूत जालियों से ढंके हुए हैं, ताकि दर्शन के बहाने से कोई शत्रु तीर नहीं चला दे। एक कमरे में लोहे का पिंजरा है, जिसमें जीवित आदमी को बन्द करके डाल दिया जाता था, और वह वहीं भूखा रहकर मर जाता था।

यहां पुराने कोड़े, जीवित मनुष्यों के जलाने के बरतन और दूसरी प्रकार की दंड देने की 'शिक्षाप्रद' वस्तुएं संग्रहीत हैं। मिट्टी के बड़े-बड़े नक्शी बरतन हैं जिनमें अब से बहुत दिन पहले, जब भारतवर्ष में मनुष्यों को नहीं जलाते थे, लाश को बन्द करके धरती में गाड़ देते थे। ये बरतन आज भी शाही महल में सुरक्षित हैं। लेकिन सबसे मनोरंजक चीज जो इस सारे महल में है, वह एक तलवार—है लचकीली, लपलपाती

हुई, तेज धारवाली फौलाद की सीधी तलवार। इससे एक किसान देश-भक्त ने, महाराजा और अंग्रेजों दोनों की फौजों का सामना किया था। किसान छोटे-छोटे जागीरदारों, और फिर रियासत के अफसरों, महाराजा और फिर उनकी अँग्रेजी राज्य को देनों से इतने परेशान हो गए थे कि उन्होंने विद्रोह कर दिया, आज से बहुत पहले जबकि अभी राष्ट्रीय आन्दोलन का आरम्भ भी नहीं हुआ था। यह उस समय की बात है, जब लड़ाइयों में तलवारों का उपयोग होता था। उसी जमाने में इस किसान ने रियासत और अंग्रेजों की दोहरी शक्ति के विरुद्ध लड़ाई लड़ी थी। उसके शत्रुओं का भी कथन है कि वह बड़ा बहादुर और साहसी, निर्भीक नेता था। वह बहुत दिन तक बड़ी सफलतापूर्वक अपने आन्दोलन का नेतृत्व करता रहा। ऐसे आन्दोलन दुनिया के दूसरे भागों में, खुद ब्रिटेन और यूरोप में भी सामंतशाही के युग में उठे थे और सख्ती से कुचल दिये गए थे। उसी तरह अन्त में इस आन्दोलन को भी कुचल दिया गया, क्योंकि अभी उसके पनपने का अवसर नहीं आया था, और वह वर्ग अभी पैदा ही हो रहा था जो उसे सफलता की चोटी तक पहुँचा सकता था। मगर फिर भी यह शानदार लड़ाई अधिकार और न्याय के पक्ष में दक्षिण भारत की पहाड़ियों में लड़ी गई। अन्त में जब वह किसान देश-भक्त गिरफ्तार हुआ तो उसे फांसी की सजा हुई। हालांकि उससे कहा गया था कि अगर उसने अपने आपको सेना के हवाले कर दिया, तो उसे कुछ नहीं कहा जायगा, लेकिन गिरफ्तार करने के बाद ही उसे फांसी की सजा सुना दी गई। इसके पहले कि दुश्मन उसे अपमानित करके जनता के सामने फांसी देते, उस देश-भक्त ने यह फौलादी तलवार अपने कलेजे में घोंप ली और अपने दुश्मनों को धोखा दे गया।

आज यह तलवार और उसका फौलादी पंजा शाही महल की दीवार पर लगा हुआ है, और याद दिलाता है उन तमाम निर्भीक लड़ाकू शहीदों की जिन्होंने प्रत्येक देश में, प्रत्येक राष्ट्र में, समाजवाद की मंजिल को निकट लाने के लिए अपना रक्त दिया है। कुछ लोग साम्यवाद को

एक विदेशी वस्तु समझते हैं, हालांकि यह एक विश्वव्यापी आन्दोलन रहा है, जिसके सींचने में, फैलाने में, दुनिया के प्रत्येक कोने के मनुष्यों ने भाग लिया है। यह विशाल समुद्र बूंद-बूंद से भरा है। यह दौर जो आज हमारे जीवन में आया है, कई सौ साल पीछे से आया है, कई देशों से गुजरा है और नई-से-नई और पुरानी हवाओं की सुगन्ध लाया है—वह सुगन्ध आज जो चारों ओर महक रही है। इसकी महक में कई शताब्दियों के मनुष्य के व्यवहार और ज्ञान का निचोड़ शामिल है। रूसी व्यवहारिकता, जर्मन शास्त्र, अंग्रेजी उपदेश, चीनी बुद्धिमत्ता! और उसमें यह प्राचीन भारतीय तलवार भी शामिल है, जो इस शाही महल की दीवार पर लटक रही है। शाही महल से निकलकर हम लोग कस्बे के छोटे-से बाजार से निकलने लगे, तो राजन ने कहा—

"इस जगह हमारे केरल के मजदूर आन्दोलन का पहला शहीद केशू पैदा हुआ था। बेकारी.......भूख.......युद्ध........बलिदान........लेकिन अन्त में विजय। युद्ध अटल है। बलिदान भी युद्ध का परिणाम है। लेकिन केशू के केरल की विजय निश्चित है, चाहे इसमें कितने ही वर्ष क्यों न लग जायं!"

फिलिप्स बाहर देखने लगा, और राजन ने कहा—"दुर्भाग्य से यहां तुम्हारे केरल की सीमा समाप्त हो रही है।"

राजन की कार उस मोड़ पर थी जहां से तामिलनाड का क्षेत्र आरम्भ होता है और केरल का खास क्षेत्र समाप्त होता है। यहां के लोगों का पहनावा बदलता जा रहा था, विशेषकर स्त्रियों का पहनावा। भाषा मलयालम के बजाय तामिल थी। गाड़ी इस समय ढलवान पर जा रही थी। पश्चिमी और पूर्वी छोर दोनों ओर से सिमटते हुए एक होने का प्रयत्न कर रहे थे। यहां की आबो-हवा भीगी-भीगी-सी प्रतीत हो

रही थी। यहां नारियल की बजाय पालमायरा के वृक्ष दिखाई दे रहे थे। शहतूत, जैतून के वृक्षों के झुण्ड, मोसंमी के पेड़........

नीचे एक सुन्दर वादी में 'कोएल' का नगर दिखाई दे रहा था, जहाँ पीले गुलाब बिकते हैं, जहाँ पीतल के पुराने बरतन बिकते हैं, वैष्णव मत की सुन्दर 'शाली' युवतियां रेशम के कपड़े बुनती हैं, और उन पर हजारों वर्षों की प्राचीन महाभारतीय युग की सभ्यता को नक्श करती हैं। नागमाला, माही की कोमल प्रतिमाएं, घुंघरू की भांति लटकते हुए कमल.......

कोएल नगर के डाक-बंगले के भीतर जाकर राजन ने कहा—"यहां चाय पीकर सचेन्द्रम् का मन्दिर देखने चलेंगे।"

"उस मन्दिर में क्या विशेषता है।"

राजन ने कहा—"वहां नग्न देवी-देवताओं की मूर्तियां हैं और कुछ मूर्तियां ऐसी भी हैं, जहां पुरुष और स्त्री परस्पर........ दिखाये गए हैं। भिन्न-भिन्न दृश्य........"

मैंने कहा—"पत्थरों का कोकशास्त्र मैं इससे पहले एलोरा की गुफाओं में देख चुका हूँ। अब मैं दुबारा इस गंदगी को देखने क्यों जाऊँ?"

"वाह इसमें गंदगी कैसी?" कोरियन ने अपना चश्मा नाक पर ठीक करते हुए कहा—"यह मूर्तियां भी हमारी प्राचीन सभ्यता की प्रतीक हैं।"

मैंने कहा—"प्रत्येक प्राचीन चीज अच्छी नहीं होती। हमारी सभ्यता का प्रतीक तो सारनाथ के खण्डहरों में भी है और सांची में भी, अजन्ता और एलोरा की गुफाओं में भी। लेकिन जिस कला का प्रदर्शन एलोरा के काम-मन्दिर या आपके सचेन्द्रम् की दीवारों पर किया गया है, इससे अगर हम दूर ही रहें तो अच्छा है। हम लोग नग्नता के विषय पर बातें करते-करते चाय पीने बैठ गए। इतने में हमारी दूसरी गाड़ी भी आ पहुँची, जिसमें हमारे दूसरे साथी बैठे हुए थे।

चारुदत्त, जो कवि था और रमनन्, जो विद्यार्थी और आलोचक था, रामकृष्ण, जो कोथलूल से आया था, सुब्बैया, जिसके फौलादी चेहरे पर संघर्ष के निशान मौजूद थे, जिसका चेहरा स्थिर और सुदृढ़ था, जो कभी मुस्कराता नहीं था, लेकिन जब मुस्कराता तो ऐसा जान पड़ता कि किसी स्याह चट्टान के सीने से चमकती हुई नदी उबल पड़ी और बल खाती हुई अपने आस-पास के सारे दृश्यों को सींचती हुई आगे जा रही है—मुस्कान, जो पानी की तरह कोमल थी और सूर्य-किरणों की तरह प्रकाशमान।

मैंने गोपी से पूछा—"सुब्बैया ने यह मुस्कान कहा से पाई ?"

गोपी ने कहा—"तुम सुब्बैया को नहीं जानते। अरे, वह बड़ा चंचल युवक है। दो साल हुए, सचेन्द्रम् के मन्दिर का वार्षिक मेला था। कोई एक लाख के लगभग यात्री होंगे, जो इन्द्र देवता के दर्शन करने आये थे। सचेन्द्रम् में राजा इन्द्र ने प्रायश्चित किया था।"

"प्रायश्चित ! इन्द्र को प्रायश्चित की क्या आवश्यकता थी ?" मैंने पूछा।

गोपी ने कहा—"वही अहिल्या वाली कथा है। जब इन्द्रदेव ने गौतम ऋषि की अनुपस्थिति में, उन्हीं जैसा भेष धारण कर अहिल्या से छल किया तो गौतम ऋषि ने क्रुद्ध होकर श्राप दिया। बेचारी अहिल्या तो इसी श्राप से पत्थर की शिला बन गई और इन्द्र के शरीर के रोम-रोम में लिंग उभर आए। इन्द्रदेव इस श्राप से बड़े लज्जित हुए और कहीं मुँह दिखाने योग्य नहीं रहे। तब उन्होंने यहां आकर पाप का प्रायश्चित किया था और अपनी तपस्या की शक्ति से अपने पाप के विष को शरीर से निकाल दिया था। इससे उनका शरीर फिर पूर्वावस्था में आ गया। इस घटना की स्मृति-स्वरूप यहां प्रत्येक साल मेला लगता है और इन्द्रदेव की मूर्ति एक बहुत बड़े रथ पर निकाली जाती है। यह रथ एक सौ पचास फुट ऊँचा है, और इसमें लकड़ी के

तीन पहिये लगे हुए हैं। इस रथ को हजारों यात्री अपने हाथ से खींचते हैं।"

मैंने पूछा—"और उस बेचारी अहिल्या का क्या परिणाम हुआ?"

गोपी ने कहा—"स्त्री को पुरुष से अधिक दंड मिलता है न? कम-से-कम अपनी सभ्यता में तो यही है। इसीलिए अहिल्या को इन्द्र के स्वस्थ हो जाने के बाद भी कई सौ वर्षों तक पत्थर की शिला बनकर मनुष्यों के पाँवों में पड़ा रहना पड़ा। यहां तक कि एक दिन श्री राम-चन्द्र जी ने इस धरती पर अवतार लिया। और जब वह धनुष-भंग कर सीताजी को ब्याहने के लिए जनकपुर जा रहे थे, तो रास्ते में पड़ी हुई शिला से उन्हें ठोकर लगी। यह अहिल्या की शिला थी। राम के चरण की ठोकर लगते ही पत्थर में जीवन आ गया और अहिल्या 'श्रीराम-श्रीराम' कहते-कहते हाथ जोड़ती हुई आकाश में अपने पति गौतम ऋषि के पास चली गई।"

मैंने कहा—"यद्यपि बेचारी अहिल्या का इसमें दोष नहीं था, क्योंकि इन्द्रदेव बिलकुल गौतम ऋषि-जैसा भेष बनाकर आये थे, और आप जानते हैं कि जब देवता भेष बदल लें, तो वह किस चतुराई से काम कर सकते हैं? मैं देवताओं को नहीं जानता, कुछ बहुरूपियों को अवश्य जानता हूं, जिन्होंने थोड़े-से अभ्यास से भेष बदलकर भारतमाता को वह श्राप दिया है कि बेचारी आज भी पत्थर की शिला बनी हुई धूल में लोट रही है।"

गोपी ने कहा—"अब सुब्बैया की बात सुनो। यह ऐन मेले के बीच में, जब महाराज इन्द्रदेव का रथ मैदान में चल रहा था, उस एक सौ पचास फुट ऊँचे रथ पर चढ़ गए, और चढ़ते ही चले गए। लोगों ने हजार बार चीखा-चिल्लाया, मगर आपने किसीकी नहीं सुनी और रथ के बिलकुल ऊपर चोटी पर जाकर इन्द्रदेव का झण्डा उतार कर लाल झण्डा फहरा दिया।"

"लाल झण्डा! हा हा हा......."

"यह भी एक अनहोनी थी कि राजा इन्द्र के रथ पर मजदूरों और किसानों का झण्डा लहराये! इसके बाद सुब्बैया ने ऊपर से ही 'इन्कलाब-जिन्दाबाद' और 'साम्यवाद-जिन्दाबाद' 'पूँजीवाद-मुर्दाबाद' के नारे लगाने आरम्भ कर दिए। यह आज से दो साल पहले की बात है। पुलिस पहले तो अचम्भे में रही लेकिन जब जनता ने भी नारों को आकाश में गुँजा दिया तो उन्होंने राजा इन्द्र की रक्षा करने के लिए गोलियां चलाईं। कई राउण्ड चले। बारह आदमी मारे गए। किन्तु सुब्बैया के एक गोली भी न लगी और न लाल झण्डा रथ से उतरा।"

"फिर?"

राजन ने कहा—"उस दिन से जनता का विश्वास इन्द्रदेव पर से उठ गया है। वह सोचते हैं, पुराने झण्डे से लाल झण्डा शक्तिशाली है।"

गोपी ने कहा—"उस साल से मेले की आय आधी से भी कम रह गई है और पुजारी लोग पूजा करने के बजाय आजकल कम्युनिस्टों को कोसने में अपना समय बरबाद करते हैं।"

चारुदत्त ने कहा—"अफीम घोलते हैं बेचारे। मार्क्स ने ठीक ही तो कहा था......."

रमनन् ने चाय का प्याला हाथ से रखते हुए कहा—"कॉमरेड, अगर आप चाय पीकर निबट गए हों, तो मन्दिर की ओर चलें।"

मैंने फिर हिचकिचाहट दिखाई तो यार लोगों ने मुझे घर लिया।

"क्यों साहब, इसमें क्या बुराई है, क्या काम-वासना के चित्र बनाना पाप है? क्या स्त्री और पुरुष का मिलाप बुरी चीज है? अगर इसमें

कोई बुराई नहीं है तो इसे चित्रकार अपनी कला में फिर से क्यों नहीं सृजन कर सकता ?"

मैंने कहा—"वासना में कोई बुराई नहीं है। वासना का वर्णन साहित्य में होता है, प्रत्येक कला में होता है। हम भी प्रेयसी के नख-शिख की सुन्दरता का वर्णन सुन्दर ढंग से करते हैं, किन्तु 'चिरकीं' की तरह प्रेयसी की विष्टा पर अपनी कलम की शक्ति नष्ट नहीं करते। यह नग्नता होगी। इसी भांति स्त्री और पुरुष का प्रेम है; प्रेम का वर्णन बड़ी सुन्दरता और गठन से हो सकता है। लेकिन यह........यह प्रेम का वर्णन नहीं है, कामुकता है। इस प्रकार की कला मनुष्य की प्रगति नहीं करती, बल्कि पतन की ओर ले जाती है; गन्दी भावनाओं को उभारती है, उकसाती है, कुरेदती है। यह आनन्द नहीं है, कामुकता की चरम सीमा है।"

"तो फिर इतनी बुरी चीज हमारे पवित्र मन्दिरों में कैसे प्रविष्ट हो गई ?"

राजन ने कहा—"जब समाज का पतन होता है तो जीवन के प्रत्येक पहलू पर उसका असर पड़ता है। गुप्त-साम्राज्य-काल में कला की उन्नति देखिए। फिर उसके पतन-काल की कला को देखिए। एक ओर शक्ति, पवित्रता और उन्नति का अनुभव होता है, तो दूसरी ओर घटिया, सस्ती, गंदी काम-कला का प्रदर्शन होता है। ऐसी कला जो अपने अन्दर सृजन के जौहर को न पाकर, कामुक भावनाओं का सहारा लेकर जनता में प्रसिद्ध होना चाहती है।"

मैंने कहा—"यह वही अन्तर है, जो मुगलों के समय अकबरी युग की फतहपुर-सीकरी और वाजिदअली शाह के लखनउआ ढंग में है, जो ताज और छत्र मंजिल में है, जो ख़याल और ठुमरी में है।"

"लेकिन देखना तो जरूर........" रमनन् कहने लगा।

गोपी ने जल्दी से उसकी बात काटकर कहा—"जरूर देखिए 'मद्र' को। इसमें कोई बुराई नहीं है। मैं भी तो आपके साथ हूँ। लेकिन

जरा जल्दी से लौट चलिए। सूरज डूबने से पहले कन्याकुमारी पहुँचना चाहिए, वरना मजा नहीं आयगा।"

सूरज कन्याकुमारी पर अस्त हो रहा था—कन्याकुमारी, जहां पूर्वी और पश्चिमी दोनों घाट आकर मिल जाते हैं; कन्याकुमारी, जहां तीन समुद्र आकर गले मिलते हैं, अरब सागर, बंगाल सागर और हिन्द सागर। और यह तीनों सागर एक बहुत विशाल अर्द्ध-चन्द्र में फैले हुए हैं। बीच में धरती की अन्तिम नोंक है और कन्याकुमारी की गुलाबी रेत पर तीनों सागर की लहरें एक-दूसरे के गले मिलकर मचल-मचल कर नाच रही हैं।

धरती की अन्तिम सीढ़ी पर खड़े होकर मैंने दक्षिण से उत्तर की ओर देखा, जहां कभी मेरा घर था, मेरे भाई थे, मेरा बाजार और शहर था, गांव थे, गीत थे, हंसी थीं और लस्सी के छन्ने थे। वहां हीर की कोमल पद-चाप थी, रांझे की रूपहरी बंजली थी। मैं, जो किसी शहर और किसी देश का नहीं हूं, मैं, जो किसी धर्म, किसी गली का नहीं हूँ, किसी पूर्व और पश्चिम का नहीं हूँ, जिसका हृदय सारा विश्व है, आत्मा खाना-बदोश है, मेरे हृदय ने कन्याकुमारी पर खड़े होकर क्यों, एक क्षण में उन खेतों को देख लिया, जहां कभी मेरा बचपन बीता था, जहां कभी मेरी बेकरार जवानी उमड़ी थी, और जहां जीवन की अन्तिम सांस घर की मिट्टी चाहती है?

सम्भवतः मेरे हृदय में वही पुरानी मिट्टी बोल रही है, हजारों मील दूर, सुनहरी धरती की याद सीने में मीठी-मीठी कसक लिये हुए जाग रही है। मैं तुझे याद करता हूँ ए मेरे पवित्र पंजाब की धरती! मैं तुझे याद करता हूँ, क्योंकि संसार में कोई दूसरी हीर नहीं है, दूसरी चिनाव नहीं है और सरसों के साग का स्वर्ग कहीं नहीं। मैं तुझे याद

करता हूँ एक मां की तरह, दो माताओं की तरह नहीं, क्योंकि बच्चे की केवल एक मां होती है, और बच्चा अकेले में अपनी मां को याद कर सकता है इस आत्मा की सच्ची, गहरी अनुभूति के साथ जिसके सामने संसार की सारी धार्मिक, राजनीतिक, अस्थायी चमत्कारी समाप्त हो जाती है। मैं याद करता हूँ और तुझे अपने इन आंसुओं का प्रणाम भेजता हूँ, जिसके सामने तीन सागरों का भी पानी कम है।

मेरे दुःख का अन्दाजा मेरे साथियों को है, क्योंकि वे लोग भी अपनी जन्मभूमि से प्रेम करते हैं; अपने घर से, अपनी पत्नी और बच्चों से स्नेह करते हैं। इन्हें भी वह खम्भा प्यारा है जिसके तारों पर उनकी प्रेयसी का संदेश आता है; वह टूटा हुआ मकान प्यारा है, जिसकी ओट में प्रेम ने पहला चुम्बन लिया था; वह तालाब प्यारा है, जिसमें कड़क पायल की हरी-हरी पत्तियां चारों ओर फैली हुई हैं। ये लोग जो मेरे साथी हैं धरती, मानव, शिक्षा और प्रगति से प्यार करते हैं। इसलिए ये मेरे उस दुःख को पहचानते हैं, जब बेटे माताओं की गोद से जबरदस्ती छीनकर अलग कर दिये जाते हैं।

कन्याकुमारी की अन्तिम सीढ़ी पर खड़े होकर मैं सामने हिन्द सागर को देखता हूँ, जो मनुष्य की प्रगति की भांति असीम है। फिर मैं पश्चिम की दिशा से आनेवाले अरब सागर को देखता हूँ, जिसने आठ सौ वर्ष पहले मेरे देश में एक इन्कलाब कर दिया था; जहां से एक हजार वर्ष पहले मसीह के शिष्य इस किनारे पर आये थे; जहां से बारह सौ वर्ष पहले, पन्द्रह सौ वर्ष पहले भारत की नावें और जहाज रोम को गये थे; रोम और वेनिस और यूनान की दिशा से सभ्यताएं उधर-से-इधर आई थीं, और इधर-से-उधर गई थीं, और धर्मों, खूनों और सभ्यताओं का मिश्रण हुआ था।

फिर मैं मुड़कर पूर्व की ओर देखता हूँ। बंगाल सागर पूर्व से भीगी हवाएं लाता है। बर्मा,स्याम, मलाया, हिन्द चीन और चीन की हवाएं लड़ाकू गीत गाती हुई, उमड़ती हुई चली आती हैं। वहां भी सभ्यताएं,

धर्म, राष्ट्र, देश और गीत छीने गए थे; वहां भी किसानों से धरती, मजदूरों से कारखाने हथिया लिये गए थे; वहां भी विदेशी बन्दूकों ने गीतों का गला घोंटा था, साहित्यिकों के गले पर कटार रखी थी, और उनकी किताबों की होली जलाई थी।

और आज पूर्वी सागर का पानी क्या कहता है ?

एक कदम आगे !
दो कदम आगे !!
तीन कदम आगे !!!

तीनों सागर मिल गए; अरब, ईरान, भारत और चीन एक हो गए। रेत के अन्तिम कणों पर भी पानी की लहरों ने विजय प्राप्त कर ली और हंसते-हंसते कहने लगीं—"काम करनेवालों का कोई देश नहीं होता, कोई रंग नहीं होता, कोई मज़हब नहीं होता; वे सब मनुष्य होते हैं और सारी दुनिया के वारिस होते हैं।"

यकायक सूरज डूब गया और राजहंस की तरह उड़ते हुए सफेद बादलों के पंख लाल-लाल होते गए। क्षितिज की लाली दूर-दूर तक समुद्र के खेतों में एक गुलनार फसल की तरह खिलती गई और लहरें अन्तिम सीढ़ी पर चढ़ती गईं। सुदूर आकाश में बादलों के गुब्बारे फूलते गए और उनमें बुर्जियां, गुम्बद, खम्भे और सुनहरी छतरियां उभरती गईं; सुनहरे बादल फैलते गए, फूलते गए; एक सुनहरे गुम्बद के ऊपर दूसरा सुनहरा गुम्बद; सुर्ख हवाइयां, मटमैली गोटें, झिल-मिलाते हुए सुनहरी सितारों के किनारे। धरती और आकाश एक ही रंग में रंग गए। चारों ओर रंग में रंग था, और हवाओं का शोर और समुद्र की उछलती हुई लहरें........

चारुदत्त कवि एक अजीब अनुभूति के संसार में बादलों की ओर देख रहा था। उसके पास सुब्बैया खड़ा था—कन्याकुमारी की अन्तिम सीढ़ी की तरह सुदृढ़ और स्थिर। दोनों के चेहरे आकाश की ओर उठे हुए थे।

चारुदत्त ने धीरे-से कहा—"सुब्बैया, वह देखो। वह ऐसा मालूम होता है जैसे दुर्गन्ध और गन्दगी से स्वच्छ, पवित्र इन्द्र देवता का रथ चला आ रहा है।........एक नया सचेन्द्रम्........"

सुब्बैया ने मुस्कराकर कहा—"लेकिन उस रथ के ऊपर भी हमारा झंडा लहरा रहा है।"

★★★

अगर अलवाई से त्रिवेन्द्रम का क्षेत्र केरल की पहाड़ी सुन्दरता है, तो त्रिवेन्द्रम से कोयलून का क्षेत्र उसकी समुद्री सुन्दरता है। वहां सूदूर तक पहाड़-ही-पहाड़ नजर आते हैं, तो यहां सुदूर तक समुद्र का किनारा चमकता है। उस सुदूर स्थान और गाड़ी की खिड़की के बीच में प्रकृति के सैकड़ों ऐसे लुभावने दृश्य हैं जो तरसी हुई निगाहों को शीतलता पहुँचाते हुए सामने से गुजर जाते हैं। लेकिन प्रकृति का जो चित्र धरती पर देर तक चमकता रहता है वह मीलों तक फैले हुए नारियल के पन्ना रंग के झुण्ड हैं, जिनकी गोद में बैकवाटर्स की सुन्दर झीलें नीलम के नगीनों की तरह चमकती हुई नजर आती हैं। इन झीलों की सतह पर बादलों के मनोहर महल नजर आते हैं, या कभी-कभी अमीरजादों की मनोहर किश्तियां, जिनकी खिड़कियों के रंगीन परदे झूलते हुए दिखाई देते हैं। यह अमीरजादे यहां खून का दबाव बढ़ जाने से अपना स्वास्थ्य सुधारने के लिए आते हैं। यहां कभी रुई की मिल में काम करनेवाला वह मजदूर नहीं आता, जिसकी जिन्दगी पर दबाव पहले से दुगना हो गया है, और जिसने अपनी जिन्दगी में कारखाने की चिमनी के धुँए और अपनी तंग चाल की दुर्गन्धित अंधियारी के सिवा और कुछ नहीं देखा; जो यह नहीं जानता कि धरती कितनी सुन्दर है। वह केवल यह जानता है कि जिन्दगी प्रत्येक क्षण उदास और असुन्दर होती है और मालिक हमेशा धोखा देते हैं। आज वह मजदूर यहां नहीं है, लेकिन कभी यह मनोहर किश्तियां और उनकी बेल-बूटेदार

खिड़कियां उसके लिए खुल जायंगी और रंगीन परदे हवा में सरसराते हुए उसका स्वागत करेंगे।

त्रिवेन्द्रम से कोयलून का क्षेत्र मुझे बहुत ही गरीब नजर आया। वहाँ की जमीन का अच्छा भाग रेतीला है और इसलिए खेती के अयोग्य है। जनता का गुजारा नारियल के वृक्ष पर है। यह वृक्ष अन्तिम जड़ से लेकर चोटी की फुनगी तक काम में आता है। कुछ समय पहले मैंने एक सरकारी फिल्म देखी थी, जिसमें नारियल के वृक्ष को सोने का वृक्ष बताया गया था। इस फिल्म में यह दिखाया गया था कि किस प्रकार इस वृक्ष का प्रत्येक भाग जनता के काम आता है। इसकी लकड़ी से भिन्न-भिन्न प्रकार का घरेलू सामान तैयार होता है। नारियल के पत्तों से छत, परदे और खिड़कियाँ बनाई जाती हैं। टोपियाँ बनती हैं। नारियल का पानी पिया जाता है, उसका गूदा खाया जाता है और उससे तरह-तरह की तरकारियाँ बनाई जाती हैं। गूदे में से तेल निकलता है, जो बीसियों तरह के काम आता है। नारियल के रेशे से दरियाँ, गलीचे और दूसरा सामान तैयार होता है। पूरी फिलम में नारियल की तारीफ ऐसे की गई थी जैसे कोई पेड़ न होकर देवता हो। पेड़ की तारीफ कोई बुरी बात नहीं। लेकिन जिस चीज की ओर उस फिलम में, और उस फिलम से बाहर की दुनिया में सरकार ने ध्यान नहीं दिया, वह हमारे साधारण मनुष्य की महानता है, जो नारियल के वृक्ष के प्रत्येक भाग को उपयोग में लाई। यह सारा परिश्रम, यह सारी उपज, यह सारी खोज उसकी है, जिसने अपने दैनिक परिश्रम से नारियल के वृक्ष को अपनी आवश्यकतानुसार अपनी आवश्यकता के लिए बना लिया। हमें सरकार से शिकायत है तो यही, कि वह वृक्षों की महानता को स्वीकार तो करती है, लेकिन मनुष्यों की महानता को स्वीकार नहीं करती। अभी तो यह एक नारियल का वृक्ष है। जरा परिश्रम करनेवाले मनुष्य को खुलकर प्रगति करने का अवसर दीजिए, उसके वातावरण को संगीतमय बनाइए, उसे शिक्षा, कला और विज्ञान से परिचित होने

दीजिए। वह इस विश्व में से आपको सैकड़ों ऐसे सोने के वृक्षों की खोज कर देगा जो अपने लाभ से नारियल के वृक्ष को भी मात कर देंगे।

जब मैं त्रिवेन्द्रम से कोयलून जानेवाली गाड़ी में बैठा तो रास्ते में तीन बार टिकट चैकर ने मेरा टिकट देखा। उसे यह भी मालूम था कि मेरा नाम क्या है और मैं कोयलून में क्या करने जा रहा हूँ। इस बात पर मुझे जरा भी आश्चर्य नहीं हुआ कि गाड़ी के कर्मचारियों को मेरा अता-पता मालूम हो चुका है, लेकिन यह देखकर बड़ा आश्चर्य और खुशी भी हुई कि त्रिवेन्द्रम और कोयलून के बीच के क्षेत्र में जहां-जहां से हमारी गाड़ी गुजरती थी, लोगों को हमारे आगमन की सूचना मिल चुकी थी। कैसे, यह तो मैं नहीं कह सकता। लेकिन बहुधा छोटे-छोटे स्टेशनों पर मैंने देखा कि लोग लाल झण्डे लिये हमारे स्वागत को खड़े हैं और नारे लगा रहे हैं, और कोयलून जाने के लिए हमारे साथ डब्बों में बैठते जा रहे हैं। जहाँ पर गाड़ी नहीं रुकती थी, वहाँ पर स्थान-स्थान पर छोटे-छोटे गांवों की सीमाओं के बाहर मैंने दस, पन्द्रह, बीस, पचास, सौ की टोलियों को झण्डे हिलाते हुए हमारी गुजरती हुई गाड़ी का स्वागत करते हुए देखा। गाड़ी में बैठे हुए साथी इनके नारों का प्रत्युत्तर देते रहते, जब तक कि गाड़ी उनकी दृष्टि से ओझल नहीं हो जाती। साथियों ने गाड़ी को त्रिवेन्द्रम से कोयलून तक एक अच्छा-खासा, चलता-फिरता जलूस बना दिया। कोयलून पहुँच कर हम लोग बिलकुल जलूस की तरह स्टेशन पर खड़े हो गए। स्टेशन के बाहर से दो-तीन सौ विद्यार्थी स्टेशन के अन्दर आये और स्टेशन का वातावरण इन्कलाब जिन्दाबाद के नारों से भर गया। वहाँ से हम सब

लोग फिर एक जलूस की तरह उस होटल को रवाना हुए जहाँ मुझे ठहरना था।

विद्यार्थी मेरी ओर देखते और हर्ष से नारे लगाते।

"विद्यार्थी एड़े तू कार आयकम जिन्दाबाद—

(विद्यार्थी और साहित्यिकों का एका जिन्दाबाद।)

फिर एक मजदूर ने नारा लगाया—

"तूई लाली विद्यार्थी एड़े तू कार आथक्रम जिन्दाबाद।"

(मजदूरों, विद्यार्थियों और साहित्यिकों की एकता जिन्दाबाद।)

फिर यकायक किसी ने कहा—"अली सरदार जाफरी जिन्दाबाद।"

और मुझे यहां ऐसा अनुभव हुआ जैसे चलते-चलते सरदार ने मेरे कन्धे पर हाथ रख दिया और मैं घूमकर उसके मुस्कराते हुए चेहरे की ओर देखने लगा। मेरे शरीर के रोंये-रोंये में एक अजीब-सी खुशी और हर्ष की भावना भर गई। मैंने देखा कि यह जलूस मेरा नहीं था; यह जलूस सरदार का था, और सुलेमान अरीब का, और रशीदजहां का, और अमृतराय, डांगे, पहाड़ी और नियाज़हैदर, हरनामसिंह का और सैकड़ों प्रगतिशील साहित्यिकों का, जो आज हिन्दुस्तान में सलाखों के पीछे बन्द कर दिये गए हैं; जिनका अपराध केवल यह है कि वह अपने देश से प्यार करते हैं, और उसके अन्दर बसनेवाले करोड़ों मनुष्यों से प्रेम करते हैं। क्योंकि देश किसी एक ईंट, पत्थर या वृक्ष का नाम नहीं है, देश किसी एक इमारत, एक झंडे या एक व्यक्ति की ताबेदारी का नाम नहीं है, देश उन तमाम मनुष्यों से बनता है जो इसमें बसते हैं, और अपने रात-दिन के परिश्रम से उसके खेतों में हल चलाते हैं, उसके कारखानों में चरखियां घुमाते हैं, उसकी खानों से कोयला और लोहा निकालते हैं, और उसके दफ्तरों और कालेजों और स्कूलों में, मनुष्य के परिश्रम का भेद और उसकी प्रगति के पथ की खोज करते हैं। मनुष्य से प्रेम करना देश से प्रेम करना है, और उसके महान भविष्य से प्रेम करना है। कोयलून की सड़क पर चलते हुए इस समय मैं अपने साथ

उन तमाम देशभक्त साहित्यिकों को देख रहा था, जो हथकड़ियां और बेड़ियां पहने मेरे साथ चल रहे थे। उनमें कैफ़ी आज़मी और मजरूह सुल्तान पुरी भी थे, जो आज अपना नाम लेकर बम्बई की सड़कों पर नहीं चल सकते; इनमें पाकिस्तान के जिगर गोशे, अब्दुल्ला मलिक, इब्राहीम जलीस और आरिफ जलाली भी थे; इनमें पेबलोनरूदा भी था, जिसके विरुद्ध चिली की सरकार का वारण्ट है, और हावर्ड फास्ट और लुई आरांगां, इलिया एहरन बुर्ग, शोलोखाफ़ फिदईव, वे तमाम महान पथ-प्रदर्शक और दर्शनशास्त्री और बुद्धिमान थे जिन्हें इस सारी धरती से प्रेम है, इसके मनुष्यों से प्रेम है, इनके बालकों से प्रेम है। इस जलूस में उनके शक्तिशाली हाथ थे और जागृत मस्तिष्क और खिली हुई हंसी थी। और यह सब लोग आज एक जलूस की तरह उसी झंडे के नीचे जमा हुए थे, जो इन्सान का झंडा है, जो शांति की ध्वजा है, जो नव-जीवन का संसार है।

कोयलून की सभा में त्रिचूर के बाद सब जगहों से अधिक उपस्थिति थी। कोई पांच-सात हजार के करीब लोग होंगे। सभा श्रीनारायण कालेज के विशाल मैदान में की गई थी। विद्यार्थी भी दस हजार के लगभग होंगे। बाकी लोग कोयलून के नागरिक थे। कोयलून एक अच्छा-खासा औद्योगिक केन्द्र है। यहां के लोकोशेड में चार सौ रेलवे मजदूर काम करते हैं। ए० डी० कॉटनमिल में अठारह सौ के करीब मजदूर हैं। इनमें से आजकल पांच सौ के करीब मजदूरों की छटनी हो चुकी है। इसके अलावा केशोनट तैयार करने की फैक्टरियां भी हैं, जिनमें पचानवे प्रतिशत औरतें काम करती हैं। कोयलून और उसके उपनगरों को लेकर केवल एक इस उद्योग में पन्द्रह हजार के लगभग औरतें काम करती होंगी। केशोनट फैक्टरी के मजदूरों की लाल यूनियन बड़ी मजबूत समझी जाती

है। इस यूनियन के सभापति कॉमरेड गोविन्दन् नायर हैं, जो केरल की जनता में बहुत प्रसिद्ध हैं। उनके व्यक्तित्व की प्रसिद्धि का यह हाल है कि जनता ने उन्हें अपनी देवमाला में शामिल कर लिया है और उनकी बहादुरी, साहस और दिलेरी के सम्बन्ध में बहुत-सी कहानियां भी गढ़ ली हैं; यहां तक कि मैंने बहुत-से दूसरे वर्गों, यानी कांग्रेसी और सरकारी वर्गों के लोगों से भी उनकी तारीफ सुनी है।

कोयलून के विद्यार्थी भी त्रिवेन्द्रम के विद्यार्थियों की भांति जनता के संघर्षों और आन्दोलनों में कांग्रेस आन्दोलन से लेकर साम्यवादी आन्दोलनों तक अपना कर्तव्य पूरा करते आए हैं। अपनी मांगों के सम्बन्ध में तो वह खैर लड़ते ही हैं, लेकिन मजदूर वर्ग की मांगों के लिए भी वह पूरी तरह से साथ देते रहे हैं। फलस्वरूप जब त्रावंकोर के ट्रान्सपोर्ट के मजदूरों ने अपनी मांगों के सम्बन्ध में लड़ाई छेड़ी तो विद्यार्थियों ने पूरी तरह से उनकी लड़ाई में भाग लिया, जिसके आधार पर कोयलून के कालेज के बहुत-से विद्यार्थी निकाल दिये गए। उनमें रूवी माधवन भी था, जो आज हमारी सभा का सभापति था और जिसने उस अत्याचार के विरुद्ध आमरण अनशन किया। जब इस अनशन को ग्यारह दिन हो गए और किसीके कहने-सुनने पर भी अपने निश्चय पर अटल रहा, तो उसे अस्पताल ले जाया गया। यहां पर एक पुलिस के सिपाही ने उससे बड़ी दिलचस्प मुलाकात की।

सिपाही—"तुम यह अनशन क्यों कर रहे हो?"

माधवन—"तुम अस्पताल के अन्दर क्यों आये हो?"

सिपाही—"मेरी मर्जी। तुम बताओ, तुम यह अनशन नहीं छोड़ोगे?"

माधवन—"नहीं!"

सिपाही—"मैं शराब नहीं पिये हुए हूँ। मैं अक्ल की बात तुमको बता रहा हूँ। तुम यह अनशन छोड़ दो, नहीं तो तुम्हारे लिए अच्छा नहीं होगा।"

माधवन—"तुम्हें मेरे अनशन से क्या मतलब है ?"

सिपाही—"मतलब है। तुम अपने मां-बाप का ख्याल नहीं करते तो अस्पतालवालों का ही कुछ ख्याल करो। (नर्स की ओर इशारा करके) इन औरतों के सामने तुम्हें अनशन करते हुए लज्जा नहीं आती ?"

माधवन—"मैं तो एक कुत्ते के सामने भी अनशन कर सकता हूँ।"

सिपाही—"अच्छा, अब मैं तुमको पीटूंगा। मगर मैं शराब पिये हुए नहीं हूँ।"

इस सिपाही ने माधवन को पीटा और अस्पताल में हुल्लड़ मच गया और लोगों में जोश-खरोश और बढ़ गया। सारे शहर में इस कमीनी हरकत के विरुद्ध प्रदर्शन होने लगा। इस अवसर पर श्री बालकृष्णन् ने, जो 'केरल कौमुदी' के संपादक हैं, बीच में पड़कर गवर्नमेंट और विद्यार्थियों के बीच समझौता कराया, और जब विद्यार्थियों की मांगें स्वीकार की गईं तब जाकर माधवन ने अपना आमरण अनशन छोड़ा।

कालेज की दीवारों पर आज भी चॉक से लिखा हुआ था—'माधवन को वोट दो।'

माधवन माईक पर कह रहा था—"हम प्रगतिशील साहित्य का स्वागत करते हैं........"

विद्यार्थियों की हड़ताल की सहानुभूति में कोयलून के मजदूरों ने भी हड़ताल की थी और कोयलून के पत्रकारों ने भी उनका साथ दिया था। जिन दिनों माधवन अस्पताल में अनशन किये हुए था मजदूर, पत्रकार, विद्यार्थी और दूसरे नागरिक जलूस की शक्ल में दो बार अस्पताल गये थे। कोयलून के पत्रकारों में बड़ी जागृति पाई जाती है।

प्रेस कान्फ्रेंस में साहित्य के सम्बन्ध में जो प्रश्न मुझसे किये गए उनसे पता चलता था कि त्रिवेन्द्रम की तरह यहाँ के जर्नलिस्ट भी प्रगतिशील साहित्य में बड़ी दिलचस्पी रखते हैं, और उसे अपने दैनिक पत्रों में विशेष स्थान देते हैं। इस विवाद में 'केरलम्' जिसके सम्पादक जी० फिलिप्स रह चुके हैं और 'नवभारतम्' और 'केरल कौमुदी', और 'पावरिया प्रभा' के पत्रकारों ने काफी भाग लिया। फिलिप्स ने मुझे बताया कि यहाँ पत्रकारों की यूनियन की मजदूर वर्ग से एकता इतनी बढ़ गई है कि एक बार पुलिस ने 'केरलम्' के सह-संपादक लक्ष्मणम् को छउरा मजदूरों की लड़ाई के सम्बन्ध में पीट दिया, क्योंकि पुलिस के लोगों को लक्ष्मणम् की रिपोर्ट, जो उसने अखबार में प्रकाशित की थी, पसन्द नहीं आई थी। इस पर अखबारों में बहुत ले-दे हुई और बाद में राज्य ने एक जांच-समिति भी कायम की। मगर फिर वह मामला ठप हो गया। इस सम्बन्ध में कोई खास नतीजा नहीं निकला। परन्तु एक बात अवश्य हुई कि इस घटना के बाद से विद्यार्थी, मजदूर और पत्रकार, और दूसरे संभ्रांत नागरिक अपनी मांगों के सम्बन्ध में एक-दूसरे से सलाह लेते हैं और एक-दूसरे का हाथ बँटाते हैं, और बराबर जनता के संघर्ष में भाग लेते हैं। शायद इसीलिए आज की सभा में छः-सात हजार आदमी जमा हो गए थे।

दो-एक दिन में क्रिसमस का दिन आनेवाला था। मैंने फिलिप्स से पूछा—"क्रिसमस पर तुम घर जाओगे या मेरे साथ अलप्पी चलोगे?"

फिलिप्स एक क्षण के लिए ठहरा, फिर बोला—"मैं तुम्हारे साथ अलप्पी जाऊँगा।" फिर थोड़ी देर चुप रहा, और फिर बोला—"अच्छा मैं किसी और को तुम्हारे साथ अलप्पी भेज देता हूँ। मैं घर जाऊँगा।"

फिर थोड़ी देर बाद बोला—"नहीं, मैं खुद ही चलता हूँ। पत्नी को पत्र लिखे देता हूँ।"

इस पर हम दोनों हँसने लगे। फिलिप्स के ब्याह को अभी तीन महीने हुए थे, और यह पत्नी के साथ पहली क्रिसमिस थी। उसके हृदय के अन्दर जो संघर्ष हो रहा था उसे मैं अच्छी तरह समझ सकता था। कर्तव्य और प्रेम की इस छोटी-सी लड़ाई में अंत में कर्तव्य ने विजय पाई और हम लोग अलप्पी के लिए रवाना हो गए।

अलप्पी को लॉरी पौ फटने से पहले ही जाती थी, इसलिए हम लोग चार बजे ही होटल से तैयार होकर अड्डे पर पहुँच गए। रास्ते में कोई खास घटना नहीं हुई। ताड़ के वृक्ष झुण्डों की धुन्ध में अर्द्ध-निद्रित खड़े हुए थे और अर्कनाट के सीधे तने घरों के बाहर धुँए की चादरें ओढ़े हुए नजर आते थे। धान के खेतों में सफेद कुहरा इतना छाया हुआ था कि जैसे बादल आकाश से उतरकर धरती पर सो गए हों। एक अजीब-सी नींद और नशीलापन चारों ओर छाया हुआ था। तारों की आँखें भी झपक-झपक जातीं और यात्री सीटों पर बैठे-बैठे इंजिन की लोरी सुनते-सुनते ऊँघने लगते। मैं भी बड़े आनन्द में अपनी सीट से लगा सो रहा था। यकायक एक जगह लॉरी के रुकने की आवाज आई और उसके धक्के से आदमी जाग गए। लेकिन अभी मेरी आँखें बन्द ही थीं कि मैंने सुना, किसीने कहा—

"चाय—गरम-गरम चाय।"

"संतरे—मीठे संतरे।"

"मंदिर के लिए चढ़ावा।"

यकायक मैंने आँखें खोल दीं और चकित होकर फिलिप्स से पूछा—"यह क्या बात है?"

फिलिप्स ने बताया—"यहाँ से निकट एक बहुत बड़ा और पुराना मंदिर है। यह आदमी उसी मंदिर का एजेन्ट है। यह धार्मिक यात्रियों से चढ़ावा वसूल करता फिरता है। इसको चढ़ावे पर कमीशन मिलता है।"

फिर आवाज आई—

"चाय—"

"संतरे—"

"चढ़ावा—"

मैंने सोचा—इस लॉरी के अड्डे पर तो बड़ा आनन्द है। यहाँ सब कुछ बिकता है। चाय, संतरे, धर्म सब-कुछ मिलता है और साथ में कमीशन मिलता है। मैंने फिलिप्स से पूछा—"भई, अगर थोड़ी-सी चाय ले लें और थोड़ा-सा धर्म; और उन्हें संतरे के रस में मिलाकर हिलाया जाय तो यह कैसी 'काकटेल' रहेगी ?"

फिलिप्स ने नाक चढ़ाकर कहा—"ऊँ, हूँ, बड़ी बदबूदार होगी। खाली संतरे ले लो........"

जब हम लोग बहुत से संतरे खा चुके, तो फिलिप्स ने कहा—"यह एक संतरा बाकी रह गया है, इसे रहने दो।"

"क्यों ?"

"आगे चलकर बतायेंगे।"

"अभी क्यों नहीं बताओ ?"

"अभी अवसर नहीं।"

"इसमें अवसर का क्या प्रश्न है ?"

"बच्चों की तरह जिद् नहीं करते। आगे चलो बतायेंगे।"

आगे चलकर दो-तीन जगह जहाँ-जहाँ लारी रुकी मैं पूछता—"यहाँ बताओगे ?"

वह हँसकर कहता—"नहीं, आगे बतायेंगे।"

इस तरह करते-करते हम लोग अलप्पी के बिलकुल निकट पहुँच

गए। कोई चार-पांच मील इधर अलप्पी के निकट एक गांव के पास एक आदमी ने हाथ दिया। गाड़ी रुक गई। फिलिप्स ने मुझे उतरने के लिए इशारा किया। मैं और फिलिप्स दोनों यहां उतर गए। मैंने देखा कि फिलिप्स के हाथ में एक संतरा है और सड़क पर खड़े रहने वाले नवयुवक के हाथ में एक संतरा है। वह दोनों एक-दूसरे को देखकर मुस्कराए और नवयुवक ने हमें अपने पीछे आने का इशारा किया।

"अच्छा तो यह सिगनल था," मैंने फिलिप्स से कहा।

फिलिप्स मुस्कराया।

"मगर तुमने इस सिगनल का प्रबन्ध कैसे किया? क्या इस गांव में तार है? यहां से कोयलून तो बहुत दूर है।"

"तार, डाक कुछ नहीं है।" फिलिप्स ने उत्तर दिया।

"फिर?"

वह मेरी ओर देखकर अजीब भाव से मुस्कराया। बोला—"बस प्रबन्ध हो जाता है। अधिक पूछकर क्या करोगे?"

"यह भी ठीक है," मैंने कहा—"अब आगे चलो। कहां चलते हो? आगे शायद एक आदमी मिलेगा जिसके हाथ में अनार होगा। फिर वहां से हम बाईं ओर को घूमेंगे, जहां एक आदमी मकई का भुट्टा लिये खड़ा होगा। फिर वहां से दाईं ओर जायंगे, जहां एक आदमी अंगूरों का गुच्छा लिये खड़ा होगा। फिर वहां से हम सीधे अपने लक्ष्य की ओर बढ़ जायंगे, जहां एक आदमी तरबूज लिये खड़ा होगा।"

फिलिप्स हँसने लगा। बोला—"तुम रोमांटिक कहानी सचमुच अच्छी लिख लेते होगे। मगर यहां रोमांस की बात नहीं है, सख्त मजबूरी थी। जिस जगह हम जा रहे हैं, वहां सरकारी जांच-पड़ताल की इतनी गरमी है कि बहुत संभलकर काम करना पड़ता है। और यदि उन्हें कुछ भनक भी पड़ गई कि तुम यहां किसी खोज या पूछताछ के लिए आ रहे हो तो सीधे धर लिये जाओगे। पर तुम्हारी रक्षा के लिए

मैंने अपनी क्रिसमस की छुट्टी बरबाद कर दी है। इसलिए चुपके-से मेरे साथ चले आओ।"

इसके बाद चुपके-से हम लोग वहां से रवाना हो गए। रास्ते में नारियल के रेशे बुननेवाली फैक्टरी मिली, जो खुली पड़ी थी और जिसकी खड्डियों पर कोई काम नहीं करता था। हालांकि चारों ओर नारियल के वृक्ष थे, और रेशे बुननेवालों की भी कोई कमी दिखाई नहीं देती थी, मगर ऐसा मालूम होता था जैसे यहां अब बहुत समय तक इन खड्डियों पर कोई काम नहीं हो सकेगा। हमारा पथ-प्रदर्शक हमें आगे-ही-आगे धान के खेतों के बीच एक संकरे रास्ते पर चलाता हुआ ले जा रहा था। आगे जाकर नारियल के वृक्षों का एक झुंड था। यहां एक घर था। इस घर के बाहर दो औरतें नारियल के रेशे बुन रही थीं। एक औरत और एक लड़का नारियल के रेशों को पतले सूत में परिवर्तित कर रहे थे। दो औरतें चरखे चला रही थीं; एक आदमी नारियल के तने से लगा खड़ा हमारी प्रतीक्षा कर रहा था, क्योंकि इसके हाथ में भी एक संतरा था।

वहां से हम फिर आगे चले। यहां धान के खेत समाप्त हो गए थे और अब बारीक सफेद रेत आरम्भ हो गई थी, जो नारियल के झुंडों के बीच-बीच में हर जगह फैली हुई थी। मैंने मोजे और जूते उतार लिये और कोमल, नरम, गुदगुदाने वाली रेत पर चलने लगा। आगे चलकर एक पानी की नहर आई, जिस पर एक नारियल का तना आर-पार पड़ा हुआ था। यह तना बहुत पतला था, और जरा ऊंचा भी था। हमारा पथ-प्रदर्शक बड़े आराम से चलता हुआ इस पर से निकल गया।

मैंने पतलून उतार ली।

"क्या करते हो?" फिलिप्स बोला।

मैंने कहा—"मुझे सरकस के रस्से पर चलने का अभ्यास नहीं। मैं इस पुल पर से नहीं, पानी के बीच में से होकर जाऊंगा।"

पानी की नहर, जिसे यहां 'लोड़' कहते हैं, गुनगुनी और बड़ी कोमल थी। तह में नरम-नरम रेत पर पांव ऐसे पड़ते थे, जैसे मोटे गलीचे पर। मैं बड़ी शांति से धीरे-धीरे नहर के पानी को काटता हुआ आगे बढ़ता गया और फिर दूसरे किनारे पर पहुँच गया। पथ-प्रदर्शक ने फिलिप्स से कुछ कहा और फिलिप्स ने मुझसे कहा—"आगे भी दो-तीन और ऐसे लोड़ आयंगे। इसलिए तुम पतलून अगर कन्धे पर डाल लो तो अच्छा है।"

मैंने पतलून कन्धे पर डाल ली, और वे दोनों फिर हँसने लगे। आगे जाकर दो आदमी और मिल गए। पथ-प्रदर्शकों ने कन्धे पर पतलून डाले हुए आदमी की ओर इशारा किया। वे लोग मेरी ओर देखकर मुस्कराए।

आगे जाकर फिर धान के छोटे-से खेत दिखाई दिये, और आबादी के आसार। यहाँ पर एक जगह नागफनी की बहुत-सी झाड़ियाँ थीं। यहां पर फिर एक आदमी संतरा लिये बैठा था। पथ-प्रदर्शक उसके पास चला गया। उस आदमी ने पथ-प्रदर्शक से कुछ कहा। पथ-प्रदर्शक ने फिलिप्स से कुछ कहा। फिलिप्स ने मुझसे कहा—"सब-कुछ ठीक है, कोई खतरा नहीं।"

"तो मैं पतलून पहन लूँ ?" मैंने पूछा।

सब लोग खिलखिलाकर हँस पड़े।

नागफनी की झाड़ियों के पास से निकलकर हम एक ऊँचे खेत से आगे निकलकर नीची जमीन पर चले गए, जहां बहुत-से नारियल के झुण्ड थे, और उनके बीच में एक खुली-सी जगह थी, जहां एक उजड़ा मकान खड़ा था, इसके बाहर एक उदलम का वृक्ष था और एक 'पूमरश' का। इसके पचास-साठ गज के फासले पर एक जोहड़ में नारियल की कूली गड़ी हुई थी। कूली के चारों ओर कड़क पायल की हरी-हरी पत्तियाँ फैली हुई थीं।

चारों ओर सन्नाटा था, और उजाड़पन।

फिलिप्स ने मुझसे कहा—"यह पुन्नापारा है।"

पुन्नापारा गाँव ! जहां सर सी० पी० की हिटलरशाही को समाप्त करने के लिए केरल की जनता ने अपना पहला मोरचा बाँधा था—वह सर सी० पी० जो त्रावंकोर को ब्रिटिश कामनवेल्थ के अन्दर भारत से अलग एक स्वतन्त्र राज्य का दरजा देना चाहता था, ताकि वह अपनी डिक्टेटरशिप कायम रख सके। इसके विरुद्ध यहां जनता ने पहला मोरचा संगठित किया था। सामने के उजड़े घर में उसके सिपाही थे और उनके चारों ओर पुन्नापारा गाँव के किसान, और रेशे बुननेवाली फैक्टरियों के मजदूर, जो अलप्पी में काम करते हैं। उनके नेतृत्व में ये मोरचा यहां लगाया गया था। सर सी० पी० के तीस-चालीस सिपाही मारे गए थे, और लगभग इतने ही पुन्नापारा के किसान और मजदूर।......इस मोरचे की गूँज चारों ओर फैल गई और त्रावंकोर की कांग्रेस ने भी इस आन्दोलन का साथ दिया।........फिर दूसरा मोरचा इसी जगह गरम हुआ। सर सी० पी० की आज्ञा से चारों ओर से इस गांव को घेर लिया गया और हर बाहर निकलने वाले रास्ते पर मशीनगनें अड़ा दी गईं। उस दिन भी इस गाँव के और आस-पास के पचास-साठ किसान-मजदूर शहीद हुए थे। फिर यहाँ के गाँव के कई घर जला दिये गए और स्त्रियों की मर्यादा लूटी गई, क्योंकि हिटलरशाही की और जागीरदारी की अपनी कोई मर्यादा नहीं होती, वह दूसरे की मेहनत पर जीती है और दूसरों का खून चूसकर स्वयं को जीवित रखती है।

पथ-प्रदर्शक ने कहा—"उस दिन महाराज का जन्म-दिवस था। पुलिस उस कांग्रेसी के घर में थी।"

"क्या कांग्रेसी ने पुलिस को आश्रय दिया था?"

"नहीं, उस समय तो वह लोग भी हमारे साथ थे। यह मकान तो पुलिस ने जबरदस्ती खाली कराया था।"

"अब उस मकान में कोई नहीं रहता है?"

"अब उस मकान में कौन रहेगा?" वह बोला।

मैंने पलटकर उससे पूछा—"तुम्हारा नाम क्या है ?"

"तन्गापन।"

"क्या तुम उसी गाँव के रहनेवाले हो ?"

"हाँ।"

"कौन जात ?"

"इरावस," उसने बड़े गर्व से कहा—"हमारी जात सबसे नीची है, परन्तु सबसे अधिक शहीद हमारी ही जाति के थे।"

"कुछ नाम बताओ।"

"केशवन, थामस, फ्राँसिस......."

मैंने फिर उसकी ओर देखा। फिलिप्स ने कहा—"यह गाँव ईसाइयों का है; ईसाइयों की बस्ती है यहाँ। स्वतन्त्रता की लड़ाई में और मजदूर-आन्दोलन में गरीब ईसाई जनता ने कुछ कम भाग नहीं लिया है।"

"मजदूरों की एक जात होती है," दूसरे पथ-प्रदर्शक ने मुस्कराकर कहा।

मैंने रेत से उठकर कहा—"चलो, आगे चलो।"

हम लोग नारियल के वृक्षों से आगे चलने लगे। जगह-जगह नारियल के तनों पर बन्दूक की गोलियों के निशान थे। आगे निकले तो एक घर मिला, जिसके बाहर एक बुढ़िया नारियल का सूत कात रही थी।

पथ-प्रदर्शक ने कहा—"इसकी लड़की 'मेरी' जेल में है।"

"क्यों ?"

"मजदूरों के आन्दोलनों में भाग लेती है। और अब तो पुन्नापारा के आन्दोलन को भी मजदूरों का आन्दोलन कहा जाता है। इसीलिए तो काँग्रेस ने शासन प्राप्त करते ही अपने वह सारे वायदे भुला दिए जो उन्होंने पुन्नापारा के सम्बन्ध में गिरफ्तार किये गए साथियों की रिहाई के सम्बन्ध में किये थे। वह लोग अभी तक जेल में हैं।"

माँ हमारी ओर देखकर मुस्कराई। हाथ के इशारे से हमें बुलाकर कहने लगी—"मैंने अपने मेहमान के लिए एक नारियल रखा है, इन्हें खिलाओ।........यह केवल मेहमान के लिए है और किसीके लिए नहीं।......." माँ ने नारियल तोड़कर मुझे दिया। मैं और फिलिप्स इसमें से बारी-बारी से पानी पीने लगे। माँ तन्गापन के सिर पर हाथ फेरती जाती थी और हमारी ओर देखकर मुस्कराती जाती थी।

जहां पर पुन्नापारा गाँव समाप्त होता था, वहाँ पर वृक्षों का एक बहुत बड़ा झुण्ड था, जिसके ऊपर एक सफेद झण्डा लहरा रहा था। उसके निकट एक छोटा-सा तालाब था, जिसके पास एक घर गिरा पड़ा था; केवल दरवाजा सुरक्षित था। घर के चारों ओर की बाड़ टूटी पड़ी थी और उसमें जगह-जगह पर झाड़ियाँ उग आई थीं। तालाब में काशनी रंग के फूल खिले हुए थे। तालाब से घूमकर हमारा रास्ता अलप्पी को जाता था। इस रास्ते पर से एक नवयुवती हमारी ओर आ रही थी।

पथ-प्रदर्शक ने कहा—"यह मीनाक्षी है।"

"कौन मीनाक्षी?" मैंने पूछा।

पथ-प्रदर्शक कुछ कहने को था, लेकिन युवती बहुत निकट आ गई थी। वह युवती एक अजीब खोयेपन-सी अवस्था में हमारे पास से गुजर गई, और वृक्षों के झुण्ड की ओर चली गई, जहां अञ्जली और अलञ्जी के वृक्ष थे, और इन पर 'आल' और 'ओडा' की हरी-भरी बेलें दूर ऊपर तक चढ़ती चली गई थीं। वहां जाकर वह युवती देर तक खड़ी रही। पहले ऊपर देखती रही, जहां सफेद झंडा था, फिर उसकी पलकें नीचे झुक गईं और उसने धरती पर से कुछ सफेद-सफेद अलञ्जी के फूल उठा लिये, और उन्हें अलञ्जी के वृक्ष की खोह में डाल दिया। फिर हाथ जोड़कर खड़ी हो गई।

"यह क्या करती है?" मैंने पूछा।

पथ-प्रदर्शक ने धीरे-से कहा—"यह हमारे गांव का 'काव' है। काव एक पवित्र स्थान होता है, जहां गांववाले आकर पूजा करते हैं। यहां

बहुत-से सांप भी रहते हैं। एक दिन मीनाक्षी और पित्रूस ने इसी जगह काव के सामने प्रतिज्ञा की थी कि वे एक-दूसरे से ब्याह करेंगे।''

''पित्रूस कौन था ?''

''वह हमारा शहीद है। पुन्नापारा की लड़ाई में शहीद हुआ था, और सामने के घर में रहता था। इसका घर बाद में गिरा दिया गया। अब यहां कोई नहीं रहता।''

मीनाक्षी के हाथ धीरे-से नीचे गिर गए। वह धीरे-से मुड़ी और पित्रूस के घर की ओर चली गई और दरवाजे से लगकर इस तरह खड़ी हो गई जैसे कोई अपने आपको प्रेमी की गोद में डाल दे।

मैंने बड़ी मुश्किल से पूछा—''अब यह यहां क्या करने आती है ?''

पथ-प्रदर्शक ने बड़ी मुश्किल से कहा—''अब यह हर रोज पित्रूस से कहने आती है कि तेरी मीनाक्षी किसीसे ब्याह नहीं करेगी।''

पुन्नापारा से होकर हम लोग अलप्पी चले गए, जो इस गांव से चार मील की दूरी पर होगा। यहां विद्यार्थियों ने एक सभा की थी। सभा के सभापति, जिन्होंने मेरा परिचय उपस्थित जनता से कराया, बड़े दिलचस्प थियोसोफिस्ट थे। आपने अपने परिचय के भाषण में मेरे सम्बन्ध में बताया कि मैं एक प्रगतिशील लेखक हूं और साम्यवाद में विश्वास रखता हूं। प्रगतिशीलता बहुत अच्छी चीज है।

लेकिन गांधीवाद भी बुरा नहीं।

साम्यवादी मनुष्यता की उन्नति चाहते हैं।

लेकिन धर्म भी यही चाहता है।

साम्यवादी ईश्वर को नहीं मानते।

लेकिन वह उन बुरे लोगों से हजार दर्जे अच्छे हैं, जो ईश्वर को मानते हैं, लेकिन व्यवहार में ईश्वर को नहीं जानते।

ईश्वर है क्या ?

ईश्वर हमारे अन्दर है।

वह सबके अन्दर है, चाहे वह मनुष्य हो या पशु, नेक हो या बुरा।

नेकी या बुराई ऊपर से बढ़ी हुई चीजें हैं।

एक चीज के दो पहलू, नेक-से-नेक मनुष्य के अन्दर भी बुराई छिपी रहती है, और बुरे-से-बुरे मनुष्य के अन्दर भी नेकी दबी रहती है। (यानी पूंजीपति भी नेकी करता है।)

इसलिए कौन किसी को दण्ड दे सकता है....(चोरबाजार।)

इसलिए किसीको दण्ड नहीं मिलना चाहिए....(पूंजीपति को लूटने दो।)

केवल अपना आप सुधारो....(और समाज को उसकी अवस्था पर छोड़ दो।)

अपने आप सुधारने में ही मानवता का निर्वाण है....निर्वाण....प्रगति नहीं ! (निर्वाण यानी जीवन से मुक्त होना, जीवन में प्रगति करना नहीं)

बचपन में मैं पुराने धार्मिक लोगों से इस प्रकार के भाषण सुना करता था, या आज वर्षों के बाद ऐसा दिलचस्प भाषण सुनने का संयोग हुआ, जिसका प्रत्येक पहला वाक्य दूसरे वाक्य की काट करता था। उपरोक्त सज्जन जो कह रहे थे झट पहलू बदलकर उसका विरोध कर देते थे। ऐसी शानदार कलाबाजी मैंने इम्पीरियल सरकस में भी नहीं देखी थी। जाने स्टूडेण्ट फेडरेशनवाले लोगों ने इन्हें क्या समझकर यहां बुला लिया था ! सभा के बाद जब चाय की बारी आई तो उनसे और दिलचस्प बातें हुईं; अबकी बार उनके साथ एक और सज्जन मिल गए, जिनका सर घुटा हुआ था और सिर पर एक गोल टोपी रखे थे।

थियोसोफिस्ट—"इस देश को जिन्ना ने बरबाद किया, वरना इस देश का बंटवारा नहीं होता।"

गोल टोपी—"बिलकुल ठीक।"

मैं—"जिन्ना से पहले इस देश में मनु मौजूद थे।"

थियोसोफिस्ट—"मनु ने समाज को पेशों के दृष्टिकोण से बांट दिया; इसमें कोई बुराई नहीं थी। बुराई तब पैदा हुई जब मुसलमान आये। अपनी संस्कृति को बचाने के लिए यहां के हिन्दुओं ने जात-पांत के रिवाज को जकड़कर सख्त कर दिया।"

गोल टोपी—"बिलकुल ठीक।"

मैं—"मुसलमानों से अपने आपको बचाने की क्या आवश्यकता थी? आप तो सारे मनुष्यों को एक मानते हैं।"

थियोसोफिस्ट—"मैं इस समय एक राजनीतिक बात कर रहा हूं। राजनीतिक दृष्टिकोण से मुस्लिम लीग अपराधी है, उसने देश का बँटवारा किया।"

मैं—"बँटवारे के समझौते पर कांग्रेस और लीग दोनों के हस्ताक्षर हैं।"

थियोसोफिस्ट—"वह अलग बात है। वास्तव में हिन्दू में रक्षा की प्रवृत्ति बहुत अधिक है। उसकी संस्कृति में भी विरोधी भावनाओं को समो लेने की शक्ति है।"

मैं—"गये दंगों में यह भावना प्रकाश में नहीं आई।"

थियोसोफिस्ट—"लीग ही अपराधी है। आप यथार्थता को क्यों नहीं देखते? क्या आप समझते हैं, हिन्दुओं ने देश का विभाजन कराया?"

मैं—"मैंने तो यह कभी कहा ही नहीं। मैंने तो हिन्दू और मुसलमान जनता का नाम भी नहीं लिया। इतना अवश्य कह सकता हूँ कि जिस समझौतावादी नीति से देश का विभाजन हुआ, इस पर कांग्रेस के प्रतिनिधियों, मुस्लिम लीग के प्रतिनिधियों और ब्रिटिश साम्राज्य के

प्रतिनिधियों के हस्ताक्षर हैं। मैं तो केवल यह कहता हूँ कि अगर प्रजातन्त्र वास्तव में किसी चिड़िया का नाम है तो इतने बड़े देश के विभाजन के पहले जनता से पूछ लिया जाता कि तुम्हें इस बंटवारे के सम्बन्ध में क्या कहना है, तो बुराई नहीं होती। उसके बाद चाहे वही होता जो अब हुआ........"

थियोसोफिस्ट—"होना वही था जो अब हुआ। यह विभाजन अवश्यम्भावी था।"

मैं—"अवश्यम्भावी था तो मुस्लिम लीग को क्यों अपराधी बनाया और लाखों-करोड़ों मनुष्य क्यों घर से बेघर हुए और मृत्यु के घाट उतार दिये गए?"

थियोसोफिस्ट—"यह रक्तपात स्वतन्त्रता का मूल्य है, जो हमने चुकाया है।"

मैं—"आपकी स्वतन्त्रता का मूल्य पंजाब और बंगाल की जातियां क्यों चुकाएं?"

थियोसोफिस्ट—"यह मेरा विश्वास है कि अगर एक मनुष्य के रक्त से समाज का हित होता हो, तो उस मनुष्य को बलि दे देना चाहिए। अगर एक प्रान्त के बलिदान से पूरे देश का हित होता हो तो उस प्रान्त को बलिदान कर देना चाहिए। अगर एक देश के बलिदान से पूरे संसार का हित होता हो तो उस देश को बलिदान हो जाना चाहिए।"

गोल टोपी—"बिलकुल ठीक।"

मैं—"यह बिलकुल पुराने धार्मिक लोगों के बलिदानवाला शास्त्र है कि एक मनुष्य के रक्त देने से दूसरे मनुष्य का हित हो सकता है; या एक छोटे देश या जाति का गला काट देने से अगर अधिक जातियों या देशों का हित होता हो तो उसे न्याय-संगत समझना चाहिए। मैं इसे थियोसोफी नहीं कहूँगा, फासिस्टवाद कहूँगा। किसी छोटी-से-छोटी जाति का अधिकार दाबने से भी संसार की शान्ति पर आघात होता है, और उसकी संयुक्त संस्कृति पर चोट पहुंचती है। यह विभाजन

अमीर लोगों का विभाजन है, जनता का विभाजन नहीं, वरना इतना रक्तपात नहीं होता।"

थियोसोफिस्ट—"जब बच्चा पैदा होता है तो दर्द बढ़ता है। दर्द और रक्त निर्माण का मूल्य है।"

मैं—"खेतों में काम करनेवाली ऐसी हजारों मांओं को मैं जानता हूं जो बच्चा पैदा होने के दूसरे दिन ही फिर अपने घर-बार के काम में जुट जाती हैं। लेकिन आपके विचार में निर्माण केवल नर्सिंग-होम में ही हो सकता है।"

गोल टोपी—"साहब, बंटवारा बिलकुल अवश्यम्भावी था, वरना देश में कभी शान्ति-संतोष नहीं होता।"

मैं—"आज क्या देश में शान्ति और संतोष है?"

गोल टोपी—"तो क्या आप विभाजन के विरुद्ध हैं?"

मैं—"मैंने विभाजन के पक्ष या विपक्ष में कुछ नहीं कहा। पहले आप विरुद्ध बोल रहे थे और मुस्लिम लीग को अपराधी सिद्ध कर रहे थे और अब आप विभाजन की तरफदारी करने लगे। मेरे विचार में यही आपकी सही भावना है।"

गोल टोपी—"नहीं, मैं बंटवारे के विरुद्ध था, मगर अब नहीं हूँ। अब चाहता हूँ कि हिन्दुस्तान और पाकिस्तान अलग-अलग स्वतन्त्र रहकर आराम और शान्ति से रहें। मगर जब तक पाकिस्तान की पॉलिसी नहीं बदलती, ऐसा असम्भव है।"

मैं—"इसलिए जंग अवश्यम्भावी है?"

थियोसोफिस्ट—"कह नहीं सकते; ईश्वर के कानून निराले और रहस्यमय हैं। आपका क्या विचार है?"

मैं—"ईश्वर के रहस्यों को तो मैं नहीं जानता, धरती की बात कहता हूँ। जहाँ का मैं रहने वाला हूँ, उसे एक जमाने में पंजाब कहते थे। यह देश श्रीपुर हजारे से अम्बाले तक और रावलपिंडी से मुलतान तक फैला हुआ था। इसमें पाँच नदियां बहती थीं। इस देश के नब्बे

प्रतिशत लोग किसान थे, जिनकी एक भाषा थी एक पहनावा था; जीवन के रहन-सहन के रस्मो-रिवाज एक जैसे थे। इनमें जाति की बहुत-सी बातें एक जैसी थीं, जिन्हें उभारा और शक्तिशाली बनाया जा सकता था। लेकिन स्वार्थी लोगों ने अपने हित की खातिर ऐसा नहीं किया। उन्होंने हमेशा अलग-अलग धार्मिक प्रवृत्तियों को उभारा; एक-दूसरे से लड़वाने का प्रयत्न किया और उन विचार-धाराओं और भावनाओं को मजबूत करने की कोशिश की जो किसी जाति के शीराजे को बिखेरते हैं, जमा नहीं करते। यह प्रयत्न कई वर्षों से चल रहे थे। इनमें सबसे बड़ी शक्ति ब्रिटिश साम्राज्य की थी। उसके पिट्ठू हिन्दू, मुसलमान और सिक्ख पूँजीपति और जमींदार थे और उनका पृष्ठपोषण दूसरे प्रांतों के पूँजीपति भी कर रहे थे, जिनमें गुजराती और मारवाड़ी पूँजीपति और यू० पी० के अमीर मुसलमानों का वर्ग आगे-आगे था। मैं यह कहता हूँ कि उनमें से किसी एक को एक क्षण के लिए यह अधिकार नहीं था कि वे पंजाब की जनता को भेड़-बकरियों के गल्ले की तरह बांट दें; उनके देश को एक छोटी-मोटी जमींदारी की तरह अपने बेटों में बाँट दें। पंजाब के भाग्य का फैसला उसके बेटे करते। फिर चाहे वह अपने देश के एक के बजाय तीन या चार हिस्से कर देते; वह एक होकर रहते या एक-दूसरे से अलग हो जाते। इन तमाम बातों के सम्बन्ध में फैसला करने का अधिकार पंजाब की जनता को था। लेकिन जान-बूझकर उन्हें यह अधिकार नहीं दिया गया। उन्हें न कांग्रेस ने दिया, न मुस्लिम लीग ने, न ब्रिटिश सरकार ने, क्योंकि मेरे विचार में ऐसा करना उनके अपने हितों के विरुद्ध था। इसका सबूत यह है कि विभाजन के बाद उनके हितों को कोई नुकसान नहीं पहुँचा। नुकसान पहुँचा तो पंजाब की जनता को। उनके घर लूटे गए, जायदादें बरबाद हुईं, जमीनें छीनी गईं, औरतों की मर्यादा नष्ट हुई और बच्चों के गले काटे गए। इन मुसीबतों में हिन्दू और मुसलमान और सिक्ख बराबर के भागीदार रहे, यानी यह रक्त पूरे पंजाब की नाड़ी से बहाया

गया। लेकिन जो अमीर सिक्खों का वर्ग वहाँ था वह पूर्वी पंजाब में आकर भी उसी तरह अमीर रहा। जो लोग इधर जमींदार और जागीरदार थे, वहाँ जाकर भी जमींदार और जागीरदार रहे। यानी अपने वर्ग-हित को हर हालत में सुरक्षित कर लिया गया, बल्कि पहले से और भी अच्छा बना लिया गया। कई हालतों में और अधिक मजबूती और गरमी से जनता के चारों ओर जंजीर कस दी गई। इसका दूसरा अर्थ यह है कि जनता की शक्तियाँ शोषक शक्तियों के मुकाबले में कमजोर थीं, इसलिए हार खा गईं। जो पंजाब में हुआ, वही बंगाल में अब हो रहा है। वही अब हिन्दुस्तान और पाकिस्तान के प्रत्येक प्रान्त में हो रहा है। यह विभाजन कोई साधारण एक पंजाब या बंगाल का विभाजन नहीं है। यह बँटवारा है। इस बँटवारे ने हिन्दुस्तान और पाकिस्तान को एक सिरे से दूसरे सिरे तक चीरकर रख दिया है। प्रत्येक प्रान्त में, प्रत्येक कस्बे में, प्रत्येक गली में दो विरोधी शक्तियाँ बिलकुल एक-दूसरे के मुकाबले में आ गई हैं। यह दो भिन्न-भिन्न विचार-धाराओं और संस्कृति का बँटवारा है। यह दो परस्पर विरोधी समाजों का बँटवारा है। एक ओर जनतंत्र का तकाजा है और दूसरी ओर साम्राज्यवादी और शोषण करने वाले वर्गों का हित है। एक ओर आगे बढ़ती हुई शक्ति है दूसरी ओर पीछे घसीटनेवाली साजिश है। हिन्दुस्तान और पाकिस्तान के अन्दर हर जगह यह दोनों शक्तियाँ एक-दूसरे के सामने खड़ी हैं, और उनमें कभी कोई समझौता नहीं हो सकता। इन दोनों में से एक को समाप्त होना है। और मेरे ख्याल में मृत्यु को समाप्त होना है, और जीवन को आगे बढ़ना है।"

गोल टोपी—(तश्तरी आगे बढ़ाकर) "फिलहाल मिठाई खाइए।"

थियोसोफिस्ट—(आह भरकर) "मनुष्य की कशमकश स्थायी है। उसे किसी तरह शान्ति-संतोष नहीं है। वह हमेशा बेचैन रहता है और प्रगति करता रहता है। मगर प्रगति क्या है? प्रगति खुशी है। क्या अशोक के युग का मनुष्य अकबर के युग के मनुष्य से कम खुश

था। क्या छकड़ा चलानेवाला गाड़ीवान, हवाई जहाज चलानेवाले से अधिक खुश नहीं ? मैं पूछता हूँ......."

गोल टोपी—"बिलकुल ठीक।"

मैं—"क्या बन्दर मनुष्य से अधिक खुश हैं ?"

जो वादविवाद मैंने ऊपर लिखा है, सम्भव है उसके सम्बन्ध में भावना के तौर पर कोई विरोध हो। सम्भव है मैंने अपना या किसी दूसरे सज्जन का कोई विचार या अर्थ कुछ गलत बताया हो। लेकिन जो बातचीत हुई उसका निष्कर्ष यही था। उसकी पूरी भावना और परिणाम यही था; और सम्भवतः उसका ढांचा और निर्माण भी इसी तरह का था।

अलप्पी केरल का सबसे बड़ा औद्योगिक नगर है और नारियल के रेशों से सामान तैयार करनेवाले कारखानों का केन्द्र है। इसकी बड़ी-बड़ी सड़कों से गुजरते हुए जो बड़े-बड़े कारखाने दिखाई देते हैं, जिनमें हजारों मजदूर काम करते हैं, उनमें से कुछ के नाम यह हैं—

१. पेरिस लेजले एण्ड कम्पनी।
२. वालकर्ट ब्रदर्स।
३. हेसपन नाल एण्ड कम्पनी।
४. डियर्स स्नेल एण्ड कम्पनी।
५. गुड ऐरन कम्पनी।

कौन कहता है कि अंग्रेज यहां से चले गए हैं ? सम्भव है हमारी पार्लमेंट में इनकी सूरत नजर न आती हो, लेकिन जहां तक नारियल के रेशों के उद्योग का सम्बन्ध है, जहाँ तक जूट के उद्योग का सम्बन्ध है, जहाँ तक चाय के उद्योगों का सम्बन्ध है, जहाँ तक तम्बाकू के उद्योग का सम्बन्ध है, जहाँ तक....। लेकिन कोई कहाँ तक गिनती

करवाये। केवल इतना ही कहना काफी है कि 'जहाँ तक' का गणित से सम्बन्ध है, वह अभी तक यहीं विराजमान हैं।

अलप्पी की खुली सड़कें, सुन्दर चौक और एक ही ढंग के बने हुए मकान बताते हैं कि यह शहर एक प्लॉन के अनुसार निर्माण किया गया है। इस शहर को दीवान केशवदास ने आज से डेढ़ सौ साल पहले बनाया था। इसे दक्षिण भारत का वेनिस कहा जाता है। वेनिस की तरह यहाँ भी शहर के बीच में समुद्री नहरें बहती हैं, जिनमें बहुधा नावें फिरा करती हैं और माल-असबाब ले जाती हैं। स्थान-स्थान पर जेट्टी नजर आती हैं और भाप से चलनेवाली नावें पफ-पफ करती हुई सीटियाँ बजाती हुई गुजर जाती हैं। मुसाफिर उतर रहे हैं, बोट में सवार हो रहे हैं, मल्लाह पाल फैलाते हैं या समेट रहे हैं, स्त्रियां नाव के जंगलों से लगी बच्चों को दूध पिला रही हैं। वाटर फ्रन्ट के किनारे केलों के गुच्छे और संतरे बहुत अधिक तादाद में हैं। दलाल काली मिरच का भाव तै कर रहे हैं और बड़े-बड़े डोंगों के मल्लाह लम्बे-लम्बे चप्पुओं से खेते हुए नारियल के सूत के गट्ठों को कारखाने की सीढ़ियों तक ला रहे हैं। इन मल्लाहों ने, जो भाप की नाव पर काम करते हैं, या हाथ के चप्पू चलाते हैं, अपनी अखिल त्रावंकोर कोचीन लाल यूनियन बना रखी है, जो बड़ी शक्तिशाली और लड़ाकू है। इसी प्रकार रेशे बुननेवाले मजदूरों और नारियल के सूत के कारखानों में काम करनेवालों की भी लाल यूनियन है, जिसके प्रेसीडेन्ट साथी टी० वी० थामस हैं। इस यूनियन के मेम्बर सत्तर हजार से उपर होंगे। इस यूनियन की गिनती दक्षिणी भारत की शक्तिशाली यूनियनों में गिनी जाती है। हद तो यह है कि साधारण तौर पर मिलों के मैनेजर भी अगर नये मजदूर भरती करते हैं, तो इसी यूनियन के मेम्बरों से लेते हैं, क्योंकि उन्होंने

अनुभव से देख लिया है कि पूँजीवादी पक्ष की यूनियनों का कोई भी आदमी अधिक दिन कारखाने में टिकने नहीं पाता। इसी तरह अलप्पी में बीड़ी बनानेवाले मजदूरों की यूनियन है, और इन तमाम यूनियनों के अन्दर दो-ढाई लाख मजदूर संगठित हैं। संभवतः इसी कारण अलप्पी को दक्षिणी भारत के मजदूर आन्दोलन का लाल-दुर्ग कहा जाता है।

जिन दिनों मैं अलप्पी में था, उन दिनों मजदूर आन्दोलन का बड़ा दमन हो रहा था। कुछ मास पहले, यानी २६ अक्तूबर १९४९ को, वायलार के शहीदों की याद में मजदूरों ने दिन मनाया था। उस दिन भी पुलिस ने गोली चलाई थी, जिससे एक साथी मुहम्मद थप्पा शहीद हुए थे। इसके बाद नवम्बर को मजदूरों ने फिर शहर-भर में मशालें लेकर जलूस निकाला, जिसे फिर जबरदस्ती तितर-बितर कर दिया गया—कानून से नहीं, बल्कि फासिस्टी दमन से। केन्द्रीय ट्रेड यूनियन का दफ्तर बन्द कर दिया गया और जब मैं वहां पहुँचा तो बन्द ही था। लेकिन मेरे आने पर मजदूरों ने उसे खोलने का फैसला कर लिया, यद्यपि पुलिस का दमन उसी प्रकार गरम था, और पुलिस का थाना भी बिलकुल ट्रेड यूनियन के दफ्तर के सामने ही था, जहाँ कुछ दिन पहले डाक्टर........ की दुकान के सामने एक ट्रेड यूनियन के कार्यकर्ता........को गोली मार दी गई थी। लेकिन इस अत्याचार का मुकाबला करते हुए मजदूरों ने आज के दिन फिर अपनी यूनियन का दफ्तर खोला। इस समय भी कोई पांच सौ के लगभग ट्रेड यूनियन के मेम्बर इकट्ठे हो गए थे, और अपनी क्रान्तिकारी भावना का प्रदर्शन कर रहे थे।

यूनियन के दफ्तर से बाहर निकलकर मजदूर मुझे सामने की सड़क पर ले गए, जहाँ थाने के पास कुछ दिन हुए उनके एक जोशीले कार्यकर्ता को पुलिस की गोली का निशाना बनना पड़ा था। मैं वह स्थान देख रहा था और देख रहा था कि बाजार की बहुधा दुकानें बन्द पड़ी थीं, और खुली सड़क पर हमारे सिवाय और कोई चलता दिखाई नहीं देता था। थाने के बरामदे में पुलिस के जवान खड़े हुए कानाफूसी कर रहे थे, और कोई इक्का-दुक्का राहगीर सहमी हुई निराश निगाहों से इधर-उधर देखता हुआ जल्दी से बड़ी सड़क को छोड़कर आस-पास की किसी संकरी गली में घुस जाता था। हम लोग धीरे-धीरे बातें करते हुए 'शिवाकोटा पालम' की ओर बढ़ते गए। यकायक मुझे अनुभव हुआ कि जैसे मैं खुलकर अनजाने तौर पर पचास-साठ आदमियों के घेरे में हूँ; जैसे मेरे आगे-पीछे इधर-उधर हटकर मजदूर देखने में अपनी-अपनी बातों में उलझे हुए चल रहे हैं, लेकिन वास्तव में ये सब लोग मुझे अपने संरक्षण में लिये चल रहे थे। शिवाकोटा पालम तक, यानी जहाँ तक खतरे का अधिक भय था, मेरे साथ मजदूरों की जमात भी अधिक थी। पालम पार करके मेरे आस-पास लोगों की भीड़ छट गई, फिर आगे चलकर दस-पंद्रह रह गए और जब हम लोग अपने होटल पहुंचे तो मैं और फिलिप्स और दो आदमी और रह गए। अब मुझे यकायक याद आया कि इन बीस-बाईस दिनों में मुझे एक दिन भी एक क्षण के लिए अकेला नहीं छोड़ा गया। एक दिन मैं रात के दो बजे बाथरूम जाने के विचार से उठा और कमरे का दरवाजा खोलकर आगे बढ़ा तो किसी ने कहा—"आपको बाथरूम जाना है, आइए आपको रास्ता बता दूं ?" फिर वह साथी हाथ में पानी का लोटा लिये मेरे आगे-आगे चलने लगा और मैं मन-ही-मन में अपने साथियों की सिपाहियाना संगठन की दाद देने लगा। जिस क्रांतिकारी जागरूकता और अनुशासन का अनुभव मुझे केरल में आकर हुआ है, वह मैंने उत्तरी भारत में बहुत कम स्थानों

पर देखा है, और यह प्रवृत्ति ऐसी है जिसके ऊपर केरल के साथी घमंड से सिर ऊंचा कर सकते हैं।

शाम के समय हम घूमने के लिए निकले। पहले विचार था कि हम लोग समुद्र के किनारे घूमने जायंगे, क्योंकि आज फिलिप्स उदास था। आज क्रिसमस था। यहां अलप्पी से बहुत दूर किसी पहाड़ी वादी के एक छोटे-से गांव में उसकी पत्नी उसकी प्रतीक्षा कर रही थी। हमारा विचार था कि हम दोनों समुद्र के किनारे पर रेत में नंगे पांव घूमते हुए फेनिल लहरों पर उभरते हुए चांद को देखेंगे।

लेकिन होटल से निकलते ही फिलिप्स ने अपना इरादा बदल दिया, बोला—"चलो मैं तुम्हें वह बाजार दिखा लाऊं, जहां से हमने अपना मशालों का जलूस निकाला था, और जिस सम्बन्ध में कॉमरेड मुहम्मद थप्पा शहीद हुआ था।"

मैंने कहा—"बहुत अच्छा.......फिर वहां से समुद्र के किनारे चलेंगे।"

वह बाजार ऐसा ही था जैसे दूसरे बाजार होते हैं। उसके चौक में एक बहुत बड़ा मन्दिर था, जिस पर बिजली के हजारों लट्टू लगे हुए थे, और जिसके आंगनों और आंगनों के आस-पास फूलों के हजारों हार लिपटे हुए थे। घण्टे बज रहे थे, कीर्तन हो रहा था; हजारों यात्री नंगे पांव हाथ जोड़ते हुए धोतियां संभालते हुए मूर्तियों के दर्शन के लिए जा रहे थे।

मंदिर के दूर पीछे प्रकाश का लावा उबलता हुआ मालूम होता था। यकायक आकाश पर रंगीन हवाइयां लहराईं, कलियां बिखरीं, फूल खिले और बारूद के अनार रंग-बिरंगी फुलझड़ियां छोड़ते हुए वायु मण्डल में छिप गए।

"यह क्या है ?" मैंने पूछा।

फिलिप्स ने कहा—"दो मन्दिरों में मुकाबला है। यह मन्दिर, जो तुम इस चौक में देखते हो यह लोहे के और काली मिर्च के व्यापारियों का मन्दिर है; वह दूसरा मन्दिर जो दूसरे चौक में है, जो यहां से नजर नहीं आता, लेकिन जहां की अधिक रोशनी तुम यहां से देख सकते हो, वह नारियल के सूती कारखानेदारों का मन्दिर है। गत एक सप्ताह से इस मन्दिर और उस मन्दिर में सजावट की होड़ हो रही है, कभी इस मन्दिर के व्यापारी बाजी मार लेते हैं, कभी उस मन्दिर के व्यापारी........"

"और दोनों मन्दिरों के बीच में कॉमरेड मुहम्मद थप्पा की लाश है।" मैंने धीरे-से कहा।

यकायक इस मन्दिर के तालाब के ऊपर से आतिशबाजी छूटी और आकाश में फव्वारे की तरह ऊंची होकर एक भीनी फुहार की तरह चारों ओर फैल गई।

काली मिर्च के व्यापारियों ने अपने देवता की जय का नारा लगाया; उधर दूसरे मन्दिर के कारखानेदारों ने उसी जोर-शोर से उत्तर दिया। मेरे मस्तिष्क में यकायक इन दोनों मन्दिरों के बीच में मशालों की कतार भड़क उठी।

मैंने फिलिप्स से कहा—"चलो, समुद्र के किनारे चलेंगे।"

समुद्र का शोर बहुत धीमा था और रेत में अभी तक शाम की गरमी थी; चांद कहीं नहीं था और अँधियारी इस छोर से उस छोर तक फैल चुकी थी। भीगी हुई घुटी हुई हवा में अधजली बीड़ियों की थूक में लिपटी दुर्गन्ध थी और चांद कहीं नहीं था। हम लोग चांद की बहुत देर तक प्रतीक्षा करते रहे और टहलते रहे, लेकिन चांद नहीं निकला। केवल आकाश पर मन्दिरों के कंगूरों से फुलझड़ियां छूटती रहीं।

आखिर फिलिप्स ने मुझसे कहा—"चलो दोस्त, वापस चलें, चांद ऐसे स्वयं नहीं आयगा। उसे खींचकर धरती पर लाना पड़ेगा।"

★★★

वायलार अलप्पी से बारह-चौदह मील के फासले पर होगा। यह गाँव चरतल ताल्लुके में है। चरतल ताल्लुके में हमेशा अकाल रहता है। बंगाल के अकाल के दिनों में यहाँ भी भयंकर अकाल पड़ा था, जिससे बहुत-से प्राणों की हानि हुई थी। अकाल के बाद यहां के निवासियों में फीलपांव (Hydrocele) का रोग बहुत बढ़ गया है; इसका कारण है कि चरतल ताल्लुके के मनुष्य जोहड़ों का पानी पीने को बाध्य हैं। यद्यपि अलप्पी इस गाँव से बारह-चौदह मील की दूरी पर ही है और वहां से नल का पानी यहां भी भेजा जा सकता है या पाइपवैल खुदवाए जा सकते हैं, लेकिन इन बातों की ओर ध्यान देने का किसे अवकाश है ? हमारा नया विधान जीवित रहे। इसमें अगर अच्छे होने की आजादी नहीं तो कम-से-कम बीमार होने की तो पूरी आजादी है।

वायलार का गाँव एक छोटा-सा टापू तो नहीं, टापूनुमा अवश्य है। इसके तीन ओर पानी है और चौथी ओर 'नेडमपारा काड' के गाँव से इसकी सीमा मिलती है। हम लोग क्योंकि चरतल के रास्ते से आये थे, इसलिए हमें वायलार जाने के लिए जेही सर्विस का सहारा लेना पड़ा। कोई दो-तीन मिनट के अरसे के बाद नाव बैकवाटर्स के गहरे हरे जल को चीरती हुई हमें वायलार के समुद्री तट पर ले गई।

समुद्र-तट पर और भी बहुत-सी नावें बंधी थीं; चारों ओर नारियल के वृक्षों की घनी कतारें थीं और इन वृक्षों के पीछे छिपे हुए मजदूरों के घरों से नारियल के रेशों को कूटनेवाली स्त्रियों की आवाजें आ रही थीं। उत्तर की ओर दो बड़े-बड़े डोंगे पश्चिम को जा रहे थे, हवा निस्तब्ध थी और सागर खामोश था, और डोंगे चलानेवाले मांझियों की लम्बी पुकार में एक अजीब आकर्षण और दर्द छाया हुआ था। हम लोगों ने बड़ी खामोशी और झिझक से नारियल के वृक्षों के दृश्य से परे गाँव के अन्दर जाती हुई भूरे रंग की पगडण्डी पर कदम बढ़ाये। मेरे साथ फिलिप्स था, फिलिप्स पहली बार वायलार आया था। वायलार के नाम से यों तो बहुधा राजनीतिक, पढ़े-लिखे लोग परिचित हैं, लेकिन बहुत लोग आज भी यह नहीं जानते कि वायलार दक्षिण भारत का जलियानवाला बाग है। अन्तर केवल इतना है कि जलियानवाला बाग में एक अंग्रेज की आज्ञा से गोली चली थी, और यहाँ वायलार में एक अपने देश के निवासी के हाथ से कत्ले आम हुआ, जिसमें चार सौ के करीब वायलार के मजदूर और किसान स्वतन्त्रता का नारा लगाते हुए और सर सी० पी० रामास्वामी अय्यर के अमरीकी विधान मुर्दाबाद के नारे लगाते हुए शहीद हुए थे। बहुत-से मनुष्य आजकल यह भूल जाते हैं कि त्रावंकोर के दीवान अगस्त १९४७ के बाद भी अपना नाता हिन्दुस्तान से तोड़कर त्रावंकोर को ब्रिटिश कॉमनवेल्थ के अन्दर एक दूसरा स्वतन्त्र उपनिवेश का दरजा देने के लिए यह सारा रक्तपात कर रहे थे और उसके लिए उन्होंने अपनी हिटलरी की धूम मचा रखी थी। इसके विरुद्ध विरोध करने के लिए ही अलप्पी के मजदूरों और किसानों ने और पुन्नापारा के किसानों ने स्वतन्त्रता के संघर्ष में अपना रक्त दिया था। उस समय इण्डियन नेशनल कांग्रेस के नेता उन शहीदों की बहादुरी और साहस को सराहते थे और उन्हें राष्ट्रीय शहीद सम्बोधित किया जाता था। परन्तु आज वह भरम खुल चुका है।

पुन्नापारा के संघर्ष के तीन-चार दिन बाद ही वायलार में दूसरा

मोरचा बंधा, जिसमें वायलार के लड़ाकू मजदूरों और किसानों ने अपने सीने पर गोरी सरकार के काले मुहरे की गोलियां खाईं और इस साहस और बहादुरी से देश के शत्रुओं का सामना किया कि साम्राज्य-वादियों का सिंहासन एक क्षण के लिए डोल गया और सर सी० पी० को ट्रावंकोर छोड़ते ही बना तथा कांग्रेस शासन में आ गई। आज मैं उसी आजादी के मन्दिर वायलार में फिलिप्स के साथ आया था।

कुछ दूर खामोशी से पगडण्डी पर चलने के बाद हमें एक दुबला-पतला नवयुवक मिला, उसका नाम वी० जी० सुधाकिरण था, यह 'अरनाकुलम' के एक कालेज में पढ़ता था। वह यहाँ छुट्टियों में अपने घर वायलार में आया हुआ था। इसी नवयुवक ने हमें सारे वायलार में घुमाया, सबसे पहले हम इसके घर गये। इसकी बैठक में केरल के प्रसिद्ध सुधारक श्रीनारायण का चित्र लगा था और केरल के प्रसिद्ध राष्ट्रीय कवि कुमार आशान का भी चित्र था। बैठक में हमारे लिए ताजा नारियल का पानी लाया गया और घर के बहुत-से लोग हमें देखने के लिए इकट्ठे हो गए।

पानी पीकर हम लोग घर से बाहर निकले। चलते-चलते सुधाकिरण ने एक छोटे-से लड़के से कहा—"नल और दमयन्ती को चूरा डाल दिया ?"

लड़के ने कहा—"हां, अभी डालता हूँ।"

मैंने पूछा—"यह नल और दमयन्ती कौन हैं ?"

सुधाकिरण ने आँगन में खुदे जोहड़ की ओर इशारा करके कहा—"दो मछलियाँ हैं जो इसमें रहती हैं, हम लोग घर की मछलियों को कभी नहीं खाते हैं।"

मैंने कहा—"काश, कभी स्वदेशी पूँजीपति भी इस पर अमल करें।"

फिलिप्स ने हँसकर कहा—"ऐसा कैसे हो सकता है ?"

घर से बाहर निकले तो फिर समुद्र-तट आ गया। एक काला-कलूटा

लड़का फटी-पुरानी मैली-सी धोती लपेटे एक छोटी-सी नाव में काली-सी कीचड़ भरकर ला रहा था। किनारे पर जहां बहुत-सी दरियाई घास उगी हुई थी, उसने वहां लाकर नाव बांध दी और नाव से काली कीचड़ निकालकर नारियल के वृक्षों की जड़ों में डालने लगा।

मैंने सुधाकिरण से पूछा—"यह ऐसा क्यों करता है?"

सुधाकिरण ने कहा—"यह काला कीचड़ नारियल के वृक्षों के लिए बड़ी अच्छी खाद का काम देता है। क्यों बे सन्गूनी!" सुधाकिरण ने उसके कन्धे को छूकर पूछा—"अब तो हड्डी में दर्द नहीं होता?"

सन्गूनी ने दांत बाहर निकाल दिये। बोला—"कभी-कभी होता है, जब सरदी लगती है, या जब दो दिन का फाका लगता है।"

सुधाकिरण ने सन्गूनी का कन्धा मेरी ओर करते हुए कहा—"यह सन्गूनी है। जब वायलार में गोलियां चल रही थीं, यह घबराकर घर से बाहर निकल पड़ा और एक नारियल के वृक्ष के पीछे छिपकर खड़ा हो गया। आओ, मैं तुम्हें वह वृक्ष दिखाऊं।"

सन्गूनी, फिलिप्स और सुधाकिरण और मैं उस वृक्ष के समीप गये, जहां सन्गूनी अपने प्राण बचाने के लिए छिपा था। सुधाकिरण ने उत्तर की ओर संकेत करते हुए कहा—"गोली उधर से आई और इस तने के अन्दर घुसी और दूसरी तरफ से निकल गई, और फिर नारियल के वृक्ष से लगे हुए सन्गूनी के कन्धे को चीरती हुई धरती पर जा गिरी।"

जिधर से गोली वृक्ष के तने से अन्दर घुसी थी उधर एक बिलकुल छोटा-सा सूराख था, और जिधर से बाहर निकली थी उधर एक बहुत बड़ा सूराख था। सन्गूनी के कन्धे पर भी घाव का एक बहुत बड़ा निशान था।

मैंने कहा—"जाने जब यह गोली वृक्ष के तने के बजाय मनुष्य के सीने या पेट में घुसती होगी तो कितना बड़ा सूराख करती होगी?"

फिलिप्स ने कहा—"हां, गोश्त और लकड़ी में बहुत अन्तर है, यद्यपि बहुत-से शिकारी इस अन्तर को नहीं जानते।"

मैंने कहा—"जानते तो वह होंगे, लेकिन शायद परवाह नहीं करते हैं।"

सुधाकिरण ने कहा—"साम्राज्य की पलटनों ने हमारे सीनों पर जिन कारतूसों का प्रयोग किया, सुना है वह कारतूस पहले सूअर के शिकार में प्रयोग किये जाते थे।"

सन्गूनी हँसकर कहने लगा—"मैं जब अस्पताल में अच्छा हो गया तो पुलिसवालों ने मुझे बहुत पीटा। मुझसे वायलार के मोरचे पर लड़नेवालों के नाम पूछते थे। मैंने कहा—"मेरा नाम सन्गूनी है.......और किसी दूसरे का नाम मैं जानता ही नहीं।"

इसके बाद सन्गूनी वृक्षों की जड़ों में फिर काला कीचड़ डालने लगा। मैंने सोचा, मेरे देश की मिट्टी कितने उत्पादक तत्वों से भरी है, जहां सन्गूनी-जैसे दिलेर लोग पैदा होते हैं!

फिलिप्स, मैं और सुधाकिरण गांव के मन्दिर की ओर बढ़ गए, जहां पुन्नापारा के मोरचे के बाद इन्कलाबियों और आजादी के मतवालों ने अपना कैम्प सजाया था।

कुङ्कुलुम् के मन्दिर के निकट वायलार के लड़ाकों का कैम्प था। यह मन्दिर इस समय बिलकुल वीरान हालत में पड़ा था। मन्दिर के पास एक कुंआ था। लेकिन यहां कोई पानी भरने के लिए नहीं आता था। आस-पास कान्जीरिम (कुचला) के ऊंचे-ऊंचे वृक्ष थे, जिनमें नीले फूल लगे हुए थे। एक वृक्ष से बकरी बंधी थी और दीपकों के मन्दिर अपने गहरे दागदार सीनों में अत्याचार का अँधियारा लिये हुए खामोश खड़े थे।

सुधाकिरण ने कहा—"यहां उनका कैम्प था। उनके हाथ में केवल 'वायरी कुन्नम' के भाले थे, और वह लोग यहां पर परेड कर रहे थे। पास के गांव के जमींदार ने, जो आजकल केन्द्रीय असेम्बली का सदस्य है, उनकी मौजूदगी की सूचना सर सी० पी० के फौजियों तक पहुंचा दी।"

"फौज किधर से आई थी ?" मैंने पूछा ।

सुधाकिरण ने कहा—"उत्तर की ओर से; वह उधर जो सरकारी मेहमानखाना है, उधर से फौजियों की नावें आकर हमारे गांव के तट पर रुकीं और आते ही उन्होंने फायर करना शुरू कर दिया ।"

मैंने पूछा—"तुम्हें कैसे मालूम हुआ ?"

सुधाकिरण ने कहा—"मेरी मां बहुत बीमार थीं । गांव के सारे लोग इधर-उधर भाग गए थे या कैम्प में पहुंच गए थे । मेरी मां बहुत बीमार थीं, इसलिए घर पर उनके सिरहाने तीमारदारी के लिए रहना पड़ा ।"

"फिर क्या हुआ ?"

सुधाकिरण ने कहा—"जब गोली चलना आरम्भ हुआ, मैं उस समय अपनी मां को दवा खिला रहा था । मैंने उत्तर की ओर से गोली चलने की आवाज सुनी, और दक्षिण की ओर से जहां हमारा कैम्प था, उधर से इन्कलाब-जिन्दाबाद की आवाजें सुनीं । यह आवाजें हजारों सीनों से गूँजकर आती हुई मालूम होती थीं । फिर जोर से गोलियों की बाढ़ सुनाई दी और उसमें से फिर इन्कलाब-जिन्दाबाद का नारा उछलकर ऊपर आ गया ।"

"फिर ?"

सुधाकिरण ने धीरे-से कहा—"साढ़े छः घण्टे गोली चलती रही और मैं इन्कलाब-जिन्दाबाद का नारा सुनता रहा । धीरे-धीरे यह नारा मद्धम होता गया । धीरे-धीरे उसकी आवाज में शिथिलता आती गई; गोलियों की बाढ़ बढ़ती गई । अन्त में केवल एक आवाज सुनाई दी, इन्कलाब जिन्दाबाद । और इसके बाद चारों ओर एक लम्बी, न समाप्त होनेवाली खामोशी छा गई, और मेरी मां बिस्तर पर मुंह छिपाकर सिसकने लगी ।

"उस रात वायलार में कोई नहीं था; कोई रोता नहीं था, कोई सिसकी नहीं भरता था । फौजी भी चले गए थे, कुत्ते भी खामोश थे,

परिन्दे भी चुप थे। ऐसा सन्नाटा, ऐसी खामोशी, इतनी लम्बी रात मैंने कभी नहीं देखी। मुझे ऐसा मालूम होता था जैसे यह अन्धकार कभी समाप्त नहीं होगा।

"दूसरे दिन दोपहर को मैं घर से बाहर निकला; चारों ओर एक अजीब भयानक दृश्य था। शहीदों की लाशें बिखरी थीं, एक-दूसरे के ऊपर पड़ी थीं, वृक्षों से सहारा लिये खड़ी थीं, जोहड़ों में पड़ी थीं, झाड़ियों में उलझ गई थीं। किसीका सिर कहीं था, बांह कहीं, टांगें कहीं; आकाश पर चीलें मंडरा रही थीं और कौए शोर मचा रहे थे, और कुत्ते लाशों से मांस नोंच रहे थे। शहीद कैम्प से आगे बढ़ते हुए, गोलियां खाते हुए, समुद्र-तट के निकट आ गए थे। कैम्प से लाशों का लम्बा सिलसिला आरम्भ होता था। मैंने देखा कैम्प के निकट पचास-साठ लाशें पड़ी थीं;

तीन कदम आगे....
तीस-चालीस लाशें;
चार कदम आगे....
बीस-पच्चीस लाशें;
पांच कदम आगे....
पन्द्रह-बीस लाशें;
छः कदम आगे....
आठ-दस लाशें;
सात कदम आगे....
चार-पाँच लाशें;
आठ कदम आगे....

"एक लाश—जिसके हाथ में मजदूर और किसानों का झण्डा था, अपनी मुट्ठी में झंडे को ऊँचा किये पड़ी थी। लाश गोलियों से छलनी थी और झण्डा भी, लेकिन मुट्ठी अभी तक उसी मजबूती से

बंद थी। केवल दो कदम पर समुद्र था—वह समुद्र जो आनेवाले तूफानों का पता देता है।"

सुधाकिरण चुप हो गया। मैंने मन्दिर के चारों ओर देखा और सुधाकिरण से पूछा—"यह मन्दिर वीरान क्यों है? इस मन्दिर में कोई दीपक क्यों नहीं जलाता?"

सुधाकिरण ने कहा—"अब गाँववालों का विश्वास पीतल के पुराने देवताओं में नहीं रहा। अब कोई विधवा या सौभाग्यवती यहां आकर दीपक नहीं जलाती। गाँववाले कहते हैं हमने हजारों वर्ष देवी की पूजा की, लेकिन समय पड़ने यह भी हमारे काम न आई।"

सुधाकिरण आगे-आगे चलने लगा। हम उसके पीछे हो लिये। एक बड़े-से झाड़ के पास 'पाला' का एक बड़ा-सा वृक्ष खड़ा था, जिसके पत्ते फैली हुई हथेली से मिलते-जुलते थे। जोहड़ में हरे पत्तोंवाली बेलें फैली हुई थीं और उन पर 'ओडम' के लाल-लाल फूल खिले हुए थे।

सुधाकिरण उस जोहड़ के निकट रुककर कहने लगा—"इस जोहड़ में सैंतीस शहीदों की लाशें दफन हैं।"

मैं और फिलिप्स बहुत देर तक चुपचाप खड़े रहे।

अन्त में मैंने झुककर ओडम का एक लाल फूल तोड़ लिया और फिलिप्स से कहा—"बहुत समय हुआ मैंने एक कहानी लिखी थी, 'फूल सुर्ख हैं'। उस कहानी में एक नन्हा कवि जो मजदूरों की हड़ताल के दौरान में पुलिस की गोली का शिकार हो जाता है, मरते हुए मुझसे पूछता है, 'भैया, मेरी कब्र पर सुर्ख फूल कब खिलेंगे?' आज मैं उस नन्हे कवि से कहना चाहता हूँ, 'छोटे भैया! मैं उस सुर्ख फूलों को वायलार में खिलते हुए देख रहा हूँ।' "

फिलिप्स ने भी एक ओडम का सुर्ख फूल तोड़कर हाथ में ले लिया।

सुधाकिरण हमें आगे ले चला। यहाँ हड्डियों का एक बड़ा ढेर था। सुधाकिरण ने कहा—"इस ढेर के नीचे एक सौ बीस लाशें दफन हैं।"

चलते-चलते मेरा पांव एक ढेर से टकरा गया, थोड़ी-सी धूल उड़ी

और ढेर के अन्दर से दो-तीन हड्डियाँ बाहर निकल आईं।

मैंने पूछा—"यह क्या है?"

सुधाकिरण ने कहा—"यह शहीदों की हड्डियाँ हैं।"

"मगर इन्हें अच्छी तरह से दफन क्यों नहीं किया गया?"

सुधाकिरण ने कहा—"तीसरे दिन फौजी आगये थे। उन्होंने पेट्रोल डालकर इन्हें जलाने का प्रयत्न किया। कुछ लाशें जल गईं, कुछ ऐसी ही रहीं। फिर फौजी चले गए। फिर बाद में इधर-उधर के लोग वायलार में आये। लेकिन चार सौ लाशें थीं। कोई इन्हें कैसे जलाता, कैसे दफन करता? फिर इनमें से कोई हिन्दू था, कोई मुसलमान, कोई ईसाई और कौन कह सकता था—यह टांग हिन्दू है, यह सर ईसाई है, यह दिल मुसलमान का है। हमने सबको इकट्ठा करके जल्दी-जल्दी से मिट्टी के ढेरों में दफन कर दिया।"

"तो अब इन ढेरों के आस-पास बाड़ी बांध दो, ताकि किसी के पांव की ठोकर से यह हड्डियाँ बाहर तो नहीं निकल सकें।"

सुधाकिरण ने मुस्कराकर कहा—"हम हर साल वायलार के शहीदों का दिन मनाते हैं; पिछले साल हमने इन ढेरों के आस-पास बाड़ बांध दी थी और ढेरों के ऊपर मजदूरों का झण्डा भी लगाया था, लेकिन पुलिस ने वह झण्डा भी उखाड़ फेंका, और बाड़ भी खोदकर अलग कर दी। हमारे नेताओं को अब वायलार के शहीदों की कोई आवश्यकता नहीं है। जो कुछ उन्हें प्राप्त करना था सो कर चुके।"

"लेकिन....लेकिन," मैंने झल्लाकर कहा—"वायलार के शहीद सारे केरल के शहीद नहीं हैं क्या?"

सुधाकिरण ने कहा—"जिन लोगों ने केरल की धरती को बेच खाया है, वह उसके शहीदों की क्या रक्षा करेंगे? वह तो अब इन शहीदों को अपना सबसे बड़ा शत्रु समझते हैं। आज वे जीवित मनुष्यों से इतना नहीं डरते, जितना वायलार के मुर्दों से........"

सुधाकिरण ने हमें दो ऐसे और बड़े-बड़े ढेर दिखाये, जिनमें एक सौ से अधिक शहीद दफन थे। इसके बाद वह मानकिया के घर ले गया। मानकिया का एक ही बेटा था श्रीधर, और वह एक तेल की मिल में काम करता था और वायलार की लड़ाई में शहीद हुआ था।

मैंने मानकिया से पूछा—"तुम श्रीधर की माँ हो?"

सुधाकिरण ने अनुवाद किया।

मानकिया ने पलटकर एक बार मेरी ओर घूरकर देखा, फिर उसने दीवार की ओट में अपना मुँह छिपा लिया। अगर उसकी आँखों में आँसू होंगे तो मैंने नहीं देखे। अजीब कशमकश का वातावरण था। मेरे दिल में एक अजीब तरह का तूफान उठ रहा था। मैंने अपने आपको रोककर पत्थरों के चबूतरे पर खड़े होकर इस छोटे-से घर को देखा जहां कभी श्रीधर रहता था और जहां आजकल उसकी मां मानकिया और उसकी छोटी बहन तिन्गमा रहती है। मैंने तिन्गमा को गोद में उठाकर पूछा—"भैया तुझे क्या खिलाता था?"

तिन्गमा ने कहा—"मछली।"

मानकिया ने मेरी ओर घूरकर देखा और कहा—"और क्या हम लोग शामी कबाब खायंगे?"

मानकिया ने इतना कहकर फिर अपना मुँह फेर लिया।

"माँ, तुम क्या मुझे पराया समझती हो?" मैंने धीरे से पूछा।

मानकिया ने मेरी बात का कोई उत्तर नहीं दिया। मैंने चकित होकर चारों ओर देखा। इस घर के आस-पास नारियल के वृक्ष भी अधिक नहीं थे। दीवार के बाहर नारियल के रेशे बुनने की तकलियों पर जंग चढ़ चुका था। तिन्गमा चकित निगाहों से मेरी ओर देख रही थी।

मैंने मानकिया से कहा—"माँ, तेरा बेटा शहीद की मृत्यु मरा। क्या तुझे उस पर अभिमान नहीं?"

मानकिया ने झल्लाकर कहा—"मैं क्या जानूं! मेरा इकलौता बेटा था।"

मैं, सुधाकिरण और फिलिप्स वहाँ से सिर झुकाए वापस हुए। रास्ते में एक तोड़ आता था; उसे पार करने के लिए हम रुक गए और अपने जूते उतारकर हाथ में पकड़ने लगे। इतने में किसीने पीछे से आकर मेरा कंधा जोर से पकड़ लिया। मैंने घूमकर देखा, यह मानकिया थी; उसका चेहरा सुर्ख था और वह सिर से पाँव तक काँप रही थी।

"क्या है ?" मैंने चकित होकर पूछा।

मानकिया ने बड़ी तेजी से कहा—वह हाँफ रही थी और ज़ोर-ज़ोर से इशारे कर रही थी—

"अवनु अरू नालिया काये अत्थन् विगडी आना मारिचल।" (मेरा बेटा एक अच्छे उद्देश्य के लिए मारा गया।)

"इएडा मुआने ये ही इन्नी क्या मान मुखड।" (मुझे इस पर गर्व है।)

मानकिया इतना कहकर वापस अपने घर को तेज़ी से भाग गई।

यकायक फिलिप्स का चेहरा प्रकाशित हो उठा—"माँ, तुझे अपने बेटे पर गर्व है, लेकिन हमें तुझ-जैसी माँ पर गर्व है।"

लेकिन मानकिया ने सुना ही नहीं; वह जा चुकी थी।

मानकिया के घर से होकर हम लोग नारायण के घर गये। रास्ते में एक खुली जगह में पन्द्रह-बीस अधेड़ और वृद्ध स्त्रियाँ नारियल के रेशे कूट रही थीं। जब उन्होंने हमें अपनी ओर आते देखा तो ज़रा थोड़ी देर के लिए रुक गईं; फिर अपना काम करने लग गईं। इन स्त्रियों के शरीर पर कमर के सिवा और कहीं कपड़ा नहीं था। जब मैंने सुधाकिरण से इसका कारण पूछा तो उसने कहा—

"गरीबी, और पुराने युग की मूर्खता। नई नस्ल की लड़कियाँ अब अपना शरीर अच्छी तरह ढाँपने लगी हैं। लेकिन ये पुराने युग की बूढ़ी

स्त्रियाँ अब कैसे बदल सकती हैं ? वास्तव में नग्नता तो निगाहों में होती है, शरीर में नहीं ।"

इसी तरह बातें करते हुए हम नारायण के घर पहुँच गए। नारायण का रंग स्याह, शरीर कमज़ोर है, दांत बहुत अधिक सफेद, मुस्कान खिली हुई और चेहरा बुद्धिमान । नारायण वायलार के मोरचे में शरीक था और झंडा लेकर आगे चलनेवालों में से था । गोली का निशाना उसने मुझे दिखाया । गोली दायीं तरफ सीने की हड्डी को तोड़ती हुई पीछे से निकल गई थी ।

इसके पहले कि मैं नारायण से कुछ पूछ सकूँ नारायण ने मुझसे कहा—"मैं आपकी कॉन्फ्रेंस की रिपोर्ट आज के अखबार में देख रहा था; आश्चर्य होता है यह जानकर कि अभी तक आपके यहाँ ऐसे लोग मौजूद हैं, जो यह विरोध करते हैं कि जनता को साहित्य के परखने का कोई अधिकार नहीं ।"

नारायण ने पूछा—"क्या साहित्य पर मेरा कोई अधिकार नहीं ? अब तो मुझे पोलिया हो गया है, इसलिए कॉन्फ्रेंस में नहीं आ सका; वरना मैं ऐसे साहित्यिक मुनाफाखोरों की अवश्य खबर लेता, जो साहित्य की ठेकेदारी करते हैं और उसका पूंजीवादी वर्ग में नीलाम करते हैं ।"

मैंने कहा—"मैं तुमसे दो प्रश्न पूछना चाहता हूँ । उत्तर दोगे ?"

नारायण ने 'हाँ' में सिर हिलाया ।

मैंने पूछा—"तुमने वायलार की लड़ाई लड़ी; अपना रक्त दिया । लेकिन इस संघर्ष का लाभ किसी दूसरे जबरदस्त वर्ग को हुआ ।"

नारायण ने कहा—"स्थिति ही ऐसी थी । उस समय उस मंजिल से ही गुजरना था ।"

मैंने पूछा—"इन स्थितियों ने तुम्हें कायर तो नहीं बनाया ?"

"कायर होकर कहाँ जायंगे ?"

मैंने पूछा—"अच्छा, अगर तुम गद्दारों से मिल जाते तो बड़े आनन्द में जीवन बिताते।"

"कब तक ?" नारायण ने फौरन उत्तर दिया, जैसे मेरे मुँह पर जोर का तमाचा दिया हो।

मैंने पूछा—"साहित्यिकों के लिए कोई संदेश दोगे ?"

उसने बड़ी स्थिरता से कहा—"हाँ, उनसे कहना, मैं कॉयर फैक्टरी (Coir Factory) में काम करता हूँ। मेरे सम्बन्ध में लिखने से पहले वे मुझसे मिल लिया करें।"

★★★

नारायण के घर के अन्दर से निकलकर हम लोग आंगन में खड़े हो गए। इतने में सुधाकिरण ने एक वृद्ध स्त्री की ओर संकेत करके कहा—"कामरेड, यह पारो है। शहीद प्रभाकिरण इसका इकलौता पुत्र था। इस स्त्री को अस्सी वर्ष की आयु में अपना पेट पालने के लिए नारियल कूटने का काम करना पड़ता है।"

वृद्ध माँ पारो मुझे देखकर आगे बढ़ी और मेरे सामने आकर हाथ जोड़कर खड़ी हो गई। उसने मुझसे कुछ नहीं कहा। केवल उसके होंठ मेरे होंठों को देखकर कांपे और उसकी आँखें मेरी आँखों को देखकर डबडबा गईं और वह चलते-चलते मेरे सामने आकर रुक गई। वह क्षण भी रुक गया, जैसे कभी-कभी कोई क्षण आकर ठहर जाता है और समय आगे बढ़ने से इनकार कर देता है। मुझे इस बात का इकरार करना है कि मैं हजारों प्रयत्नों के बावजूद उस क्षण उसके सामने अपने आँसुओं को नहीं रोक सका। आप कह सकते हैं कि वह मेरी उथली भावना थी; आप कह सकते हैं कि मैं भावुक गधा हूँ और यथार्थ जीवन से कतई अपरिचित हूँ। लेकिन इन तमाम बातों के बावजूद मुझे यह कहना है कि मैं हजारों प्रयत्नों के बावजूद अपने आँसुओं को अपनी आँखों में नहीं रोक सका। शायद मेरे दिल में अभी वह अन्धी फासिस्टी नहीं पैदा हुई, जो मनुष्य की शहादत पर भी पत्थर की तरह स्तब्ध रहती है। यह इतनी स्वार्थी हो जाती है कि चार सौ मनुष्यों का रक्त का भार लिये हुए भी मद्रास रेडियो पर कला और संस्कृति पर लैक्चर करती है। मैं इकरार करता हूँ कि मैं ऐसा धोखाबाज नहीं हूँ। मुझे यह

स्वीकार है कि मैं एक मामूली कमजोर मनुष्य हूँ। मैं पारो के सामने रो दिया; इस तरह रोया जिस तरह बच्चा अपनी माँ के सामने रोता है। और वह इस तरह रोई, जिस तरह माँ अपने बच्चे के सामने रोती है, और फरयाद करती है। वह मेरी भाषा नहीं जानती थी और मैं उसकी भाषा नहीं समझता था, लेकिन हमारे आँसू एक-दूसरे की भाषा पहचानते थे—मनुष्यता की भाषा, मनुष्य के कार्य और संघर्ष की भाषा, उसका मिलान, उसकी मेहनत और शहादत की भाषा। मैं इन आँसुओं को कहाँ छिपाता? कैसे कहता कि मेरी आँखों का पानी मर गया है, मेरे हृदय के श्रोत सूख गए हैं और मैं शहीद की माँ के सामने भी पत्थर बनकर खड़ा रह सकता हूँ। प्रयत्न तो मैंने बहुत किये, लेकिन यह दो आँसू जाने कितनी फौलादी दीवारों को चीरकर सामने गालों पर ढुलक गए—ये दुःख, क्रोध और तूफान के आँसू जो शहीदों की समाधियों पर सुर्ख फूलों की तरह खिलते हैं, साहित्य में खून के कणों की तरह चमकते हैं और शक्तिशाली हाथों में इन्कलाब की तलवार बन जाते हैं। मैं इन आँसुओं के लिए लज्जित नहीं हूँ।

जब हम वायलार पहुँचे थे तो कुछ व्यक्तियों को छोड़कर और किसीको हमारे आने की सूचना नहीं थी। लेकिन जब हम वायलार से विदा होने लगे, तो सारा गांव हमारे साथ था। आगे-आगे छोटे बच्चों की भीड़ थी, जो नंग-धड़ंग नाचते-कूदते हुए हमें उधर ले जा रहे थे जिधर चरतल जाने के लिए नावें बंधी थीं।

किनारे पर पहुंचकर बच्चों ने मुझे चारों ओर से घेर लिया और चिल्लाने लगे—"यहां बैठ जाओ, यहां हमारे सामने रेत पर बैठ जाओ।" वह इतने छोटे-छोटे, नन्हे-मुन्हे बच्चे थे कि मुझे उनकी आज्ञा माननी पड़ी। मैं धरती पर बैठ गया।

एक छोटा-सा बच्चा आगे आया। उसके शरीर पर कुछ नहीं था, केवल कमर पर एक सफेद धागा लिपटा हुआ था। उसने मुस्कराकर अपने हाथ आगे बढ़ाये। मैंने देखा उसके हाथों में सुर्ख फूलों का एक हार है, जिसे बांस की दो तीलियों को जोड़कर बनाया गया है। यह हार उस बच्चे ने मेरे गले में डाल दिया। दूसरे बच्चे खुशी से तालियां बजाने लगे।

मैंने बच्चों को मिठाई के रुपये देने की नियत से जेब में हाथ डाला और उनसे पूछा—"बच्चो, तुम क्या चाहते हो?"

एक क्षण ठहरने के बाद—

हार डालनेवाले बच्चे ने बड़ी गम्भीरता से कहा—"हम शान्ति चाहते हैं।"

मैं आश्चर्य से इस बच्चे की ओर देखने लगा, और उसी समय दूसरे बच्चे जोर-जोर से चिल्लाकर कहने लगे—

"हम शान्ति चाहते हैं! हम शान्ति चाहते हैं!! हम शान्ति चाहते हैं!!!"

मैंने अपना खाली हाथ जेब से निकाल लिया और चुपचाप नाव में बैठ गया।

बच्चे वायलार के समुद्री तट पर खड़े थे।

नाव बैकवाटर्स के पानी में से गुजर रही थी। हल्की-हल्की लहरों पर डोल रही थी। मैंने हार उतारकर धीरे से सागर के पानी पर छोड़ दिया। हार थोड़ी दूर तक तैरता रहा, फिर बांस की दोनों तीलियां अलग हो गईं और तीलियों में पिरोये सुर्ख फूल इस तरह लहरों पर मचलने लगे, जिस तरह बच्चे नाव में बैठकर सैर को जा रहे हों। एक तीली पूर्व को जा रही थी और दूसरी तीली पश्चिम को। उन्हें देखते-देखते मैं एक कहानी सोचने लगा और उन नन्हे-नन्हे फूलों से कहने लगा........

"पूर्व को जानेवाले नन्हे-नन्हे फूलो, जब तुम पश्चिम को जाओगे तो कलकत्ते से जरूर गुजरना, जहां भारत की सच्ची आजादी की तड़प से बेकरार होकर तुम्हारी पांच माँओं ने अपनी जान कुरबान कर दी है। कलकत्ते से गुजर कर रंगून होते हुए जाना, जहाँ बर्मा के चावल उपजानेवाले चेहियारों और चर्चिलों के षड्यन्त्रों के विरुद्ध लड़ रहे हैं। रंगून से आगे चलोगे तो तुम्हें मलाया की खाड़ी मिलेगी। उसके किनारों पर तुम्हें मलाया के गुरिल्ला सलाम करेंगे। ये गुरिल्ला इसलिए नहीं लड़ रहे कि उन्हें अंग्रेजों से घृणा है, बल्कि इसलिए कि वे मलाया की टीन की खानों, और मलाया के रबड़ और चाय के बागों की सम्पत्ति को मलाया वासियों के लिए सुरक्षित रखना चाहते हैं और उसे अपने देश की उन्नति के लिए उपयोग करना चाहते हैं। इसलिए मलाया के गुरिल्लाओं का सलाम अवश्य स्वीकार करना। फिर वहां से गुजरते हुए तुम सेगाँव पहुंच जाओगे, जहां हिन्द-चीनी और हो-ची मिन्ह के सच्चे देश-भक्तों ने अमरीकी साम्राज्य की समुद्री तोपों के सामने अपने सीने खोलकर रख दिये हैं, और तोपें उन्हीं सीनों की हिम्मत से डरकर भाग गई हैं।

"प्यारे फूलो, उन बहादुर सिपाहियों का सन्देश भी सुन लेना और फिर आगे शंघाई की ओर चले जाना। रास्ते में तुम्हें चांग डुबाने का प्रयत्न करेगा, क्योंकि चांग को बहादुर फूलों से बड़ी घृणा है। लेकिन चांग अपने उद्देश्य में कभी सफल नहीं हो सकता, क्योंकि बांस की नीली में पिरोये हुए सुर्ख फूल कभी नहीं डूबते। इसलिए तुम सही-सलामत और ताजा शंघाई पहुंच जाओगे, और जब तुम शंघाई पहुँचोगे तो सारा शहर और उसके बैंड-बाजे, और सारे चीनी और उनके सरदार माओ त्से तुंग तुम्हारे दर्शनों को आयंगे। उनका सलाम भी स्वीकार करना, क्योंकि ये लोग भी शान्ति चाहते हैं।

"शंघाई से तुम ब्लाडीवोस्टक चले जाना—ब्लाडीवोस्टक, जो रूस में है; रूस, जो मजदूरों और किसानों का देश है, जहां एक बड़ा आदमी रहता है, जिसे फूलों, बच्चों और शान्ति से बड़ा प्यार है। यहां

रूसी बेड़ा तुम्हारी रक्षा करेगा, और लोग कभी तुम्हें हवाईजहाज पर सैर करायंगे, कभी तुखानी नावों में घुमायंगे और कभी रेंडियर की बरफ-गाड़ियों में बैठाकर उत्तरी ध्रुव तक ले जायंगे। वहां से तुम और आगे चले जाना, यद्यपि वहां बरफ के सिवाय और कोई नहीं रहता है, लेकिन बरफ को भी शान्ति की आवश्यकता है।

"ध्रुव से होकर जब तुम आईसलैण्ड को जाओगे तो तुम्हें अमरीकी युद्धखोरों का अड्डा मिलेगा, जो जंग के मालिक हैं। ये लोग फिर तुम्हें डुबाने का प्रयत्न करेंगे और तुम्हारा पीछा लन्दन तक करेंगे, जहां बंदरगाह पर काम करनेवाले मजदूर तुम्हें अपने शक्तिशाली हाथों की ताकत से बचायंगे। तुम उनका सलाम भी स्वीकार करना, क्योंकि मजदूर शान्ति की सबसे बड़ी शक्ति हैं।

"फिर जब तुम जिब्राल्टर पहुंचोगे तो दोनों किनारों से—स्पेन और अफ्रीका के किनारों से—तुम पर गोलियां चलेंगी, लेकिन घबराना नहीं। स्पेन में तुम्हारे बड़े चाहनेवाले मौजूद हैं और अफ्रीका के किनारों पर तुम्हारा स्वागत करने के लिए लाखों शान्ति-दूत खड़े होंगे। कोई मराकश का हब्शी, कोई पाल राब्सन का प्यारा भाई तुम्हें समुद्र की लहरों से उठाकर अपने गले से लगा लेगा और तुम अपने ध्येय तक पहुंच जाओगे।"

और मैंने दूसरी दिशा की ओर देखकर कहा—"अब पश्चिम की ओर जानेवाले फूलो, तुम्हें अदन के बहादुर जहाजियों का सलाम पहुंचे। स्वेज और सिकन्दरिया के देश-भक्तों की दुवाएं तुम्हारा साथ दें और सायप्रस के लड़ाकों के वलवले तुम्हारा हौसला बढ़ाएं, क्योंकि वे लोग बड़े बहादुर हैं, और आज तक अपने टापू में अंग्रेजी बेड़े के अड्डे के विरुद्ध लड़ रहे हैं। सायप्रस से होते हुए तुम कुस्तुनतुनिया चले जाना, और तुर्की शासन से चिल्लाकर कहना, 'नाजिम हिकमत' को रिहा करो, क्योंकि नाजिम हिकमत और शान्ति एक दोहे की दो पंक्तियां हैं। वह यूनान में फांसी के फन्दे पर झूल रही हैं, जिसने अरस्तू और सुकरात

को जन्म दिया था। शायद तुम्हें कोई ट्रीस्ट के किनारे पर भी कदम न रखने देगा, जहां तीन कौमों के साम्राज्यवादी जमा हैं। किनारे के किनारे-किनारे भी तुम्हें कोई न टिकने देगा, जहां पोप ने सुर्ख फलों पर पाबन्दी लगा रखी है। लेकिन जब तुम सिसली से घूमकर मलान पहुंचोगे तो लाखों इटली के जहाजी मजदूर एक साथ जुड़कर तुम्हारा स्वागत करेंगे, और कोई बहादुर सिपाही शत्रुओं की पनडुब्बियों और बड़े-बड़े अमरीकी जंगी जहाजों की मार से बचाता हुआ तुम्हें जोर से अपने हृदय से चिपटा लेगा, और तुम्हें खुशी-खुशी अपने घर ले जायगा, और वहां रख देगा, जहां उसकी यूनियन का कार्ड रखा रहता है।

"और फिर एक दिन इटली के जहाजी और मराकशी हब्शी दोनों रोम में मिलेंगे—रोम, जो पोप डायस का शहर नहीं है; रोम, जो पोप एंगिटस का शहर है: रोम, जो नीरो का शहर नहीं है, बल्कि शीशे का शहर है; रोम, जो कठमुल्ला ईसाइयों का शहर नहीं है, बल्कि आदिम-काल के ईसाइयों का शहर है, जो मानवता की मर्यादा और उन्नति के लिए शहीद हुए थे। इसी रोम में शान्ति-परिषद् के मौके पर एक इटली के जहाजी और एक मराकशी हब्शी सुर्ख फूल सीने से लगाये हुए एक-दूसरे से मिलेंगे, और रोम की शान्ति-परिषद् में बायलार के बेटों का संदेशा पहुंचेगा।

हम शान्ति चाहते हैं !
हम शान्ति चाहते हैं !!
हम शान्ति चाहते हैं !!!

और इस संदेशा को सारी दुनिया की मांएं सुनेंगी, क्योंकि यद्यपि दुनिया में सब बच्चों की माएं अलग-अलग हैं, लेकिन उन सबकी ममता एक है। इस संदेश को सारे वृद्ध भी सुनेंगे, क्योंकि यद्यपि सारे देशों के झण्डे अलग-अलग हैं, लेकिन उन सबकी मिट्टी एक है। इस संदेश को सारे समुद्रों के मल्लाह भी सुनेंगे, क्योंकि यद्यपि सारे समुद्रों के नाम अलग-अलग हैं, लेकिन उन सबका पानी एक है।

"और ये सारी मांएं, सारे वृद्ध और सारे मल्लाह मिलकर गरजते हुए स्वर में कहेंगे—

हम शान्ति चाहते हैं !

हम शान्ति चाहते हैं !!

हम शान्ति चाहते हैं !!!"

★★★

मैंने मुस्कराकर फूलों की ओर देखा जो लहरों पर इस तरह चमक रहे थे जैसे समुद्र ने शाही ताज पहन लिया हो। फिलिप्स ने मुझसे कहा—"साथी, बच्चे तुम्हें सलाम कर रहे हैं।" मैंने हाथ उठाकर वायलार के समुद्र-तट पर खड़े हुए बच्चों को सलाम किया। नाव के डाँडे जोर-जोर से हिलने लगे। नाव दूसरे किनारे को जोर-जोर से भागती गई। नारियल के कूटने की आवाज ताल बनकर आने लगी और वायलार के किनारे पर से शहीदों की मांओं का मद्धम, मीठा और दर्दीला गीत चारों ओर फैलता गया।

"हम फिर आयंगे..........हम फिर आयंगे और मनुष्य की नई आत्मा बनकर सारी दुनिआ में छा जायंगे।"

★★★

मैंने मुस्कराकर फूलों की ओर देखा जो लहरों पर इस तरह चमक रहे थे जैसे समुद्र ने शाही ताज पहन लिया हो। फिलिप्स ने मुझसे कहा—"साथी, बच्चे तुम्हें सलाम कर रहे हैं।" मैंने हाथ उठाकर वायलार के समुद्र-तट पर खड़े हुए बच्चों को सलाम किया। नाव के डाँडे जोर-जोर से हिलने लगे। नाव दूसरे किनारे को जोर-जोर से भागती गई। नारियल के कूटने की आवाज ताल बनकर आने लगी और वायलार के किनारे पर से शहीदों की मांओं का मद्धम, मीठा और दर्दीला गीत चारों ओर फैलता गया।

"हम फिर आयंगे..........हम फिर आयंगे और मनुष्य की नई आत्मा बनकर सारी दुनिआ में छा जायंगे।"